TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182040

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1 Accession No.

Author D86A.

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

अ
मा
नि
शा

लेखक—

करतार सिंह दुग्गल

जन्म — १९१७

शिक्षा — एम. ए. (अंग्रेजी)

आनर्स (पंजाबी)

पता — आल इंडिया रेडियो

जालन्धर।

लेखक की अन्य रचनाएँ—

कहानियां—

सवेर-सार

पिप्पल-पत्तियां

कुड़ी कहाणी करदी गई

अग्ग खाण वाले

डंगर

उपन्यास—

आंदरां

नाटक—

आत्म-घात

इक सिफ़र सिफ़र

औ गए साजन औ गए

कविता—

कंढे-कंढे

करतार सिंह दुग्गल

अमा-निशा

लुधियाना
लाहौर बुक शाप

Checked 1969

पहली बार — १९४९

मूल्य — तीन रुपये

सतलुज प्रिंटिंग प्रेस घण्टा घर लुधियाना में ज्ञानी गुरदित्तसिंह जी प्रिंटर के प्रबन्ध में छपवा कर सरदार जीवन सिंह एम. ए. मालिक लाहौर बुक शाप ने, घण्टा घर लुधियाना से प्रकाशित किया।

१५ अगस्त के नाम

आमुख

हिन्दी में कहानी-संग्रह धड़ाधड़ निकल रहे हैं। हर पत्र-पत्रिका में, वह मासिक हो या साप्ताहिक, सामाजिक हो या राजनैतिक, साहित्यिक हो या धार्मिक एक-आध कहानी ज़रूर रहती है। दैनिक पत्रों के साप्ताहिक संस्करण भी प्राय कहानी से विभूषित होते हैं। कई साहित्यिक पत्रिकाऐं कहानी-अङ्क भी निकालती है। ऐसी भी कई पत्रिकाएं हैं जिन में पठन-सामग्री केवल कहानियाँ ही होती हैं। यह सब बातें कहानी की बढ़ती हुई लोक-प्रियता की सूचक हैं। कहानियों की इस विपुल राशि को देख कर प्रसन्नता भी होती है और चिन्ता भी। प्रसन्नता इसलिए कि साहित्य का भण्डार भर रहा है, कथा-साहित्य के विस्तार के साथ भाषा का भी विस्तार होता है। पर जब हम यह देखते हैं कि

कुकुरमुत्ते की तरह उग रही इन कहानियों में वास्तविकता और गम्भीरता इनी-गिनी कहानियों में ही पाई जाती है तो हमें चिंता होती है। पत्र-पत्रिकाओं में निकलने वाली कहानियों को देखकर तो और भी निराशा होती है।

कहानियों की इस बाढ़ में अच्छी और सच्ची कहानियों की परख मुश्किल हो जाती है। आम पाठक के लिए तो हर कहानी कहानी है और जिसे हम कहानी कहते हैं, कहानी-कला की दृष्टि से जो कहानी कही जानी चाहिए, उसके लिए शायद वह कहानी न भी हो। आम पाठक कहानी में कहानी ही चाहता है—एक रोचक कथानक, कोई आश्चर्यजनक घटना या रोमांस की बात, जिससे उसके कौतूहल की तृप्ति हो या सौंदर्यासक्ति की अतृप्त वासना पूरी हो। किन्तु आज के बड़े-बड़े कहानी लेखक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में अधिक रुचि रखते हैं। वस्तुतः मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आज की कहानी की सर्व-प्रमुख विशेषता है कहानी की श्रेष्ठता की परख इसी के आधार पर की जाती है।

हिन्दी में कहानियों की परम्परा को चाहे संस्कृत के पंचतन्त्र और कथासरित्सागर से भी परे तक ले जाएं, पर यह निर्विवाद है कि आधुनिक कहानी यूरोप की देन है। यह साहित्य का वैसा ही एक नया अङ्ग है जैसा कि एकांकी नाटक। पंचतन्त्र की कहानियां आधुनिक कहानी से कई बातों में मिलती हैं, और संस्कृत में एक अङ्क वाले कई रूपक भी उपलब्ध होते हैं। तब भी आधुनिक कहानी और आधुनिक एकांकी नाटक एक नई चीज़ हैं। आधुनिक कहानी की अपनी

एक विशिष्ट कला है और विषय की दृष्टि से भी यह अपनी पूर्वजा से भिन्न है। आज की कहानी साहित्य के और अङ्गों के समान ही मानव-केंद्रित है। यह मनुष्य जीवन का खंड-चित्र है। इस में हम अपने आप को देखते हैं। यह हमारा—हमारे समाज की, हमारे देश और काल की, हमारी बदली हुई परिस्थितियों की और साथ ही हमारे अंतस् में जो गंभीर आलोडन-विलोडन होता रहता है उसकी एक जीती जागती तस्वीर है। कहानी-कार यदि कुशल है तो युग का ऐसा चित्र उतार कर रख देता है कि सत्य का आभास तो उसमें होता ही है, हमें रस भी मिलता है और प्रेरणा भी, ज्वाला भी और प्रकाश भी।

हिन्दी और उर्दू दोनों में ही प्रेमचन्द की कहानियों की बहुत धूम मची थी। वस्तुतः हमारे साहित्य में प्रेमचन्द की कहानियों ने नवयुग का प्रवर्तन किया है। प्रेमचन्द से पहले का कहानी-साहित्य ताश और शतरंज की तरह केवल मनोरंजन का साहित्य था। उसमें जीवन की वास्तविकता और गंभीरता बहुत कम थी। बंगला कहानियों के अनुवाद हो रहे थे या उनके ढङ्ग पर कहानियां लिखी जा रही थीं। अतः मौलिक प्रतिभा का अभाव सा था। ऐसे समय में प्रेमचन्द का उदय हुआ। प्रेमचन्द का युग सुधारवाद था। अतः प्रेमचन्द में सुधार का प्रवृत्त होना आश्चर्य-कर नहीं। उनकी अधिकतर कहानियां सोद्देश्य हैं। फिर भी 'कौशिक, सुदर्शन और ज्वालादत्त की कहानियों से उनमें जीवन के सूक्ष्म और मार्मिक पहलुओं के चित्रण की ओर अधिक

ध्यान दिया गया है। यद्यपि कहा जाता है कि प्रेमचन्द मनोविज्ञान के पारदर्शी पण्डित न थे तब भी यह निःसंदेह है कि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की मात्रा उनकी कहानियों में सब से अधिक पाई जाती है। प्रेमचन्द की सामाजिक दृष्टि भी बड़ी उदार तथा तथ्य-दर्शिनी है सामाजिक जीवन के जितने चित्र जिस सफाई से उन्होंने उतारे हैं वह एक सामान्य कहानी-कार की पहुंच से परे की चीज़ है।

नवीन युग में कहानी के क्षेत्र में कई नए कलाकार अवतीर्ण हुए हैं। जैनेन्द्रकुमार की कहानियां अपनी जाति की एक हैं। इनके हाथों में पड़ कर कहानी-कला अधिक निखर उठी है। एक ही दृश्य या केन्द्रीय घटना से जुड़े हुए कथानक की योजना करके समय और स्थान के संकलन का पूरा निर्वाह इन्हीं की कहानियों से आरंभ हुआ। मार्मिक अवसरों और दृश्यों के चुनाव एवं प्रभाव की व्यंजना में इन्होंने बड़े कौशल का परिचय दिया है किन्तु जब से इन्होंने दार्शनिक और विचारक का रूप धारण किया है इनकी यह विशिष्टता लुप्त सी होती जा रही है। अन्य श्रेष्ठ कहानी लेखकों में भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी और उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वाजपेयी जी की कहानियां एक निष्ठायुक्त अनुसंधान की जागरुक प्रेरणा लेकर मानव के आज के जीवन के प्रति तीखा प्रश्न रखती हैं। उनमें जीवन का अध्ययन है और है हमारे व्यक्तिगत, घरेलू और सामाजिक गंदलेपन का चटकीले विन्यास में चित्रण। जीवन और

जगत पर एक भेदक दृष्टि डालती हुई उनकी रचनात्मक व्याख्या धीरे-धीरे उठती है। उनकी कई एक ऐसी भी कहानियाँ हैं जो हमें कुछ सोचने को मजबूर करती हैं और समाज के दुर्नीति-मूलक पहलू को नष्ट करने के लिए स्फूर्ति और बल देती है। भगवतीचरण वर्मा की शैली बड़ी सजीव और प्रभावोत्पादक है। जो कुछ लिखते हैं उसका सजीव चित्र पाठकों के सामने खिंच जाता है। इलाचन्द्र जोशी यथार्थवादी कलाकार हैं। इनकी कहानियों की विशेषता है इनकी सूक्ष्म दृष्टि। इन्होंने जीवन की वास्तविकता को लेकर मानव आत्मा की आन्तरिक व्यथा का यथार्थ चित्रण किया है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' मूलतः रोमैंटिक कलाकार हैं। अनुभूति की गहनता इनकी कहानी का मुख्य गुण है। यह उर्दू और हिन्दी दोनों में लिखते हैं और दोनों में ही इन्होंने अच्छी ख्याति प्राप्त की है।

करतारसिंह दुग्गल की "अमानिशा" के साथ हिन्दी में एक नई प्रतिमा अवतीर्ण हुई है। दुग्गल पंजाबी के एक प्रतिष्ठित और ख्यातिप्राप्त कहानी लेखक हैं। आप कहानी लेखक ही नहीं कवि, नाटककार और उपन्यासलेखक भी हैं। सच्ची प्रतिमा को कोई बंधन नहीं। वह अभिव्यक्ति के नए-नए मार्ग निकालती रहती है। कविता, उपन्यास, नाटक और कहानी यह सब अभिव्यक्ति के बाह्य आकार-प्रकार हैं। कहा जाए तो भाषा भी अभिव्यक्ति का एक साधन-मात्र है। दुग्गल की अभिव्यक्ति हिन्दी में चाहे अभी रूपान्तरित होकर आई है, हमें विश्वास है कि

उनकी प्रतिभा शीघ्र ही सीधे हिन्दी में ढलेगी और तब उनकी भाषा में भी स्वतः एक विलक्षण आस्वाद होगा।

प्रस्तुत संग्रह दुग्गल की बारह कहानियों का संकलन है। इनमें से सात कहानियों का संबन्ध पंजाब के विभाजन संबन्धी उपद्रवों से है। उतनी अच्छी और इतनी मात्रा में फसाद-संबन्धी कहानियां हिन्दी में किसी कहानी-कार ने नहीं लिखीं। यह कहानियाँ दुग्गल की विशिष्ट प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण हैं।

दुग्गल में एक यथार्थवादी कलाकार की आत्मा है और इनकी सूक्ष्म दृष्टि में एक मनोवैज्ञानिक बैठा है। कहानी कहना दुग्गल को आता है और अच्छे ढङ्ग पर आता है। कथानक की रचना में कल्पना जहाँ तक अपेक्षित है वह भी इनमें है। पर दुग्गल की विशिष्टता जिस बात में है वह है इनकी मनोवैज्ञानिकता। 'तू खा' और 'कालो' इस दृष्टि से संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिनी जा सकती है। 'तू खा' का बूढ़ा शरणार्थी मनोविज्ञान का एक सुन्दर अध्ययन है और जिस ढङ्ग से इस अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है वह बहुत ही कलापूर्ण है। 'कालो' में शोहाँसिंह अपनी सुन्दर भैंस कालो को जिसे पशुओं की मण्डी में अभी-अभी एक हज़ार रुपये का इनाम मिला था और जिसे मिल्ट्री डेरी फार्म वाले तीन हज़ार रुपये पर खरीदने को तैयार थे तलवार से काट-काट कर मार डालता है। यह एक विचित्र घटना है जिस पर सहसा विश्वास नहीं होता। पर दुग्गल का मनोविज्ञान इसे सर्वथा विश्वसनीय बना देता है।

"पाकिस्तान हमारा है" भी एक सुन्दर कहानी है। शेरबाज़खां ने रक्खी पर एक दिन 'छवी' उठाई थी और दूसरे दिन 'गाना' बांध कर उसे अपनी पत्नी बना लिया। पर वही शेरबाज़खां रक्खी को सोने से लाद कर फौजियों की लारी में हिन्दुस्तान को विदा कर देता है क्योंकि उसके प्यारे पाकिस्तान का इसी में हित है।

"अमानिशा" की अन्य कहानियां भी अपनी-अपनी विशेषता रखती हैं। 'झूठ जैसा सच' कहानी में दुग्गल ने महात्मा गांधी के हत्याकांड के साथ अपने विवाह की कहानी को बड़ी कुशलता से गूंथ दिया है इस अपूर्व कौशल पर, इस कलापूर्ण सफल रचना पर और साथ ही उनके विवाह पर मैं दुग्गल को बधाई देता हूं।

मुझे विश्वास है कि 'अमानिशा' की इन कहानियों को हिन्दी में बहुत पसन्द किया जाएगा। फसाद संबन्धी कहानियां तो सचमुच हिन्दी में एक अभाव को पूरा करेंगी। ये कहानियां लेखक की पुष्ट कला का आभास देती हैं। आशा है भविष्य में वह और भी अधिक कलापूर्ण और मार्मिक रचनाएँ हिन्दी की भेंट करेगा।

डी. ए. वी. कालेज
जालंधर
२ अक्तूबर, १९४९

विद्याभास्कर 'अरुण'

आग खाने वाले

फ़िसाद पहले नवाखली में शुरू हुए। मुसलमानों ने हिन्दुओं का वध किया। हम ने अख़बारों में पढ़ा और भूल गए। जैसे जापान में कोई भूचाल आया हो-हमें क्या? फिर फ़िसाद बिहार में शुरू हुए। हिन्दुओं ने मुसलमानों के घर फूंक दिये घर के वासियों के चर्बे लगाए, उन की फसलें तबाह कर दीं। शाम को जब हम अपनी कालोनी के मैदान में खेलने इकट्ठे होते; हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख—तो न कभी मुसलमानों ने मुसलमानों से समवेदना प्रकट की न कभी हिन्दुओं ने हिन्दुओं को बुरा भला कहा। लाहौर से बिहार बहुत दूर था। हम पंजाबियों को क्या? फिर यह आग फैलती २ रावलपिण्डी पहुंच गई। मुसलमानों ने हिन्दू और सिक्खों के एक २ गांव को जला कर भस्मसात्

कर दिया । एक २ को 'छवियों' से तड़पा २ कर मारा, उन के बच्चों को नेज़ों पर उठा लिया, उन की बहू-बेटियों की लाज लूटी। उन की माताओं को, माताओं की माताओं को मुसलमान बना दिया। उन के मन्दिरों में गोवध किया गया, उनके गुरुद्वारों में हुक्के पिये गए। सारे पंजाब में त्राहि २ मच गई।

हम क्लर्कों की कालोनी में लोग कँपकपा उठे। शहर से ज़रा इधर एक ओर को हट कर हमारी कालोनी थी, जिस में हर मज़हब और हर किस्म के लोग आबाद थे। यूं तो हम सब इकट्ठे हंसते, खेलते, खाते-पीते; लेकिन सरकार की तरफ़ से मुसलमानों के अलग और हिन्दुओं और सिक्खों के अलग मुहल्ले बनाए गए थे। हम में से डेढ़ सौ से ज्यादा किसी की तनख्वाह नहीं थी। रूखी-सूखी खा के मिल-जुल कर हम रहते थे। एक दूसरे की बात बनाए रखते। मगर रावलपिण्डी के फ़िसादों ने हमें बहुत भयभीत कर दिया। हम में से बहुतों के रिश्तेदार रावलपिण्डी में मौत के घाट उतार दिये गए थे। हम में से बहुत से के पहिचानों और रिश्तेदारों ने वहां रुधिरपात किया था।

हमने फिर कहानियाँ सुनीं। किस तरह 'छवियां' लेकर, 'गंडासे' और 'टोके' लेकर नेज़े और लाठियां लेकर गांव के गांव अपने पड़ोसियों पर टूट पड़े। किस तरह खून की नदियां बह निकलीं। किस तरह धन-माल लूटा गया। किस तरह आग लगाई गई। किस तरह दौलत और पूंजी को बर्बाद किया गया। हमने यह भी सुना कि किस तरह

नारे लगाए गए, किस तरह ढोल बजे, किस तरह बन्दूकें चलीं, किस तरह बम फटे। हम ने यह भी सुना कि किस तरह बच्चों के कील ठोंक २ कर उन्हें गलियों में जड़ा गया। किस तरह घोड़ों की टापों—तले बूढ़ों को रौंदा गया, किस तरह माताएं अपने हाथों से बच्चों के गले घोंट कर मरीं। किस तरह पति अपनी पत्नियों के पेट में छुरे घोंप कर शहीद हुए। किस तरह 'कारियों' ने अपने आप को आग लगा दी। और भी कितना ही कुछ—

क्लर्कों की कालोनी में रहने वाले हिन्दू, मुसलमान और सिक्ख बहुत भयभीत हुए। जिन्हों ने कभी चींटी तक को नहीं छेड़ा था हमारी पत्नियां या बच्चे जनती माँ फिर बीमार रहा करती थीं। हमारे बच्चे या स्कूल जाते थे या रोते रहते थे। हम शाम को दफ्तर से लौटते और फिर कितनी ही फाइलें हमारी साइकिलों के पीछे बंधी हुई होती थीं। हम में से किसी के पास न कोई बन्दूक थी, न कोई पिस्तौल। हमें तो लाठियां संभालनी नहीं आती थीं छुरे पकड़ने नहीं आते थे।

रावलपिण्डी की न जाने कैसी २ बातें लोग सुना देते थे। फिर फ़िसाद अमृतसर तक पहुंच गए, अमृतसर से लाहौर और फिर छुरेबाज़ी शुरू हुई। लाहौर हमारे अपने शहर से—

अपनी कालोनी में हम सब क्लर्कों ने एक जलसा किया—हम भाई २ हैं, शहर में चाहे कुछ भी हो जाए—हमने निश्चित किया-हम एक दूसरे की ओर आंख भर कर

नहीं देखेंगे। हम ने गीता पर हाथ रख कर सौगन्ध खाई, हम ने ग्रन्थ को सिर पर उठा कर प्रतिज्ञा की, हमने कुरान आँखों से लगा कर कसम खाई। हम ने मुहल्लों में चौकीदार रक्खे, हमने वार्ड - टोलियाँ बना कर पहरा दिया। हमने ईद के दिन मुसलमानों के गले में हार डाले, उन्हों ने गुरुपर्व पर हिन्दुओं और सिक्खों को 'लस्सी' पिलाई। हम वर्षों से इकट्ठे रहते आए थे। हम देर से दफ्तरों में इकट्ठे काम कर रहे थे।

लेकिन जब भी दिल में खलबली सी मची रहती। पहाड़ सी रात कटने में न आती। यों जान पड़ता, जैसे चारों ओर कुछ न कुछ हो रहा है। हर पड़ोसी को अपने पड़ोसी के घर में कुछ न कुछ खटपट होती सुनाई देती। सन्नाटे में कुत्ते भी इस तरह भौंकते, इस तरह चीखें छोड़ते कि दिल दहल जाता। यों जान पड़ता था कि जिस दिन से फ़िसादों का आरम्भ हुआ था, उस दिन से मुसलमानों के मुहल्लों में टांगे अधिक संख्या में आने लगे थे। हर टांगे में न जाने क्या - कुछ लाया जा रहा था। उधर मुसलमान सोचते—हिन्दू बाहर नहीं निकलते, अन्दर ही अन्दर न जाने क्या कुछ बनाते रहते हैं।

शहर में बम फटने शुरू हो गए। अग्निकाण्ड की घटनाएं होने लगीं, छुरेबाज़ी और पकड़ गई। 'अल्ला हो अकबर' 'हर - हर महादेव' और 'सत श्री अकाल' के नारे आकाश को कंपाने लगे। तमाम दिन, तमाम रात—और जैसे यह जैकारे बन्द होते, तो उन की गूंज कानों में नाचती

रहती। गलियों में बच्चों ने झंडियां पकड़ लीं और 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' कहना शुरू कर दिया। कौए, मैनाएं, तोते और चिड़ियां, सब ऊंची आवाज़ में बोलते; मोटरें तेज़ चलतीं। लारियों के हार्न इस तरह बजते, जैसे ढोल पीटे जा रहे हों। सड़कों पर लोग दौड़ते हुए गुज़रते, जैसे चलना फिरना असम्भव हो गया हो।

शहर की तरफ से जो कोई भी आता बुरी २ खबरें लाता। अमुक मोड़ पर लाश पड़ी है, अमुक गली में कोई किसी के छुरा घोंप कर दौड़ गया। अमुक बाज़ार में सिक्खों और मुसलमानों की आमने-सामने लड़ाई हुई।

दफ्तर अभी तक नियमानुसार खुलते थे। सरकार अभी तक वहीं थी— ! रजिस्टर लिखे जा रहे थे, चिट्ठियां टाईप होतीं और डाक के हवाले की जातीं। अगर मैं शाम को दस मिनट की देर से आता तो मेरी पत्नी के पसीने छूटने लगते। बच्चों से बिगड़ने लगतीं, अगर बैठी होतीं तो उस से बैठा न जाता, अगर खड़ी होतीं तो देहली से आकर लग जातीं।

एक दिन मैं दफ्तर से आध घंटे की देरी से उठा। जब घर पहुंचा तो मेरी बीवी दरवाजे में जैसे अधमरी सी पड़ी थी। और रात को उसने मुझे बताया कि अगर उसे मेरी साइकिल उस घड़ी नज़र न आ जाती, तो उसके होंठों में दबी हुई चीख निकलने ही को थी। बात यह हुई कि मेरा मुसलमान पड़ोसी मुझ से दस कदम आगे आ रहा था। हम दोनों एक ही दफ्तर में काम करते थे और इकट्ठे ही

आते और इकट्ठे ही जाते। लेकिन आज यह मुझ से कुछ पहले चुपके से गुज़रा, तो गुज़री (मेरी बीवी) को यों जान पड़ा, जैसे पिछले मोड़ पर वह मेरा गला काट आया हो। उस की उंगुलियों पर लाल स्याही का धब्बा इस तरह दिखाई दिया, जैसे लहू से उसके हाथ लिथड़े हों। वह तेज़ २ जा रहा था, क्यों कि आज वह भी देरी से लौटा था। गुजरी ने सोचा कि आज उस के अन्दर छिपे हुए मुसलमान ने उस के हिन्दू पति को मार डाला है। दूसरी सुबह को मैं ने लाख सिर पटका कि वह पड़ोसियों के घर से 'इस्त्री' मांग लाए, मगर गुजरी का दिल नहीं मानता था। उसे तो उस का पड़ोसी उसके पति का कातिल दिखाई दिया था। जैसे किसी ने किसी का सचमुच वध किया हो—गुजरी को अपने पड़ोसी के साथ नफ़रत हो गई।

लाहौर जल रहा था। बाज़ार के बाद बाज़ार जले जा रहे थे, मुहल्लों के बाद मुहल्ले नीचे ऊपर किये जा रहे थे। नालियों और नुक्कड़ों में पड़ी हुई लाशें खतम होने में नहीं आती थीं। और जो शोर सब से ज्यादा सुनाई देता था, वह 'अल्ला हो अकबर' के नारों का था। 'सत श्री अकाल' के जैकारों का था। या रात को जब आग लगती, तो जलते-भुनते हुए बच्चों, औरतों की चीखें, गोलियों की तड़ातड़ नारों की गूंज से भी बाज़ी ले जातीं।

कालौनी में पहरा और भी मज़बूत कर दिया गया। एक हिन्दू, एक मुसलमान—एक सिक्ख और एक मुसलमान; हर गली में इसी तरह पहरा दिया जाता इन के इलावा

चौकीदार भी थे और हर शाम को मुहल्ले में जमा होते, कई फैसले किये जाते। —"न मुसलमान बच्चे पाकिस्तान ज़िन्दाबाद कहा करेंगे, न हिन्दू बच्चे पाकिस्तान मुर्दाबाद।" बच्चों का आपस में मिल-जुल कर खेलना बन्द कर दिया गया। बर्तन जमा हों, तो खनक पड़ते हैं। यह भी फैसला हुआ कि हिन्दी, उर्दू और पंजाबी के अख़बार कालोनी में आने बन्द कर दिए जाएं।

कालोनी की औरतें आजकल प्रायः बीमार रहने लगीं थीं। किसी से खाया-पिया न जाता। अगर कुछ खाया जाता, तो वह हज़म न होता सब के चेहरे ज़र्द पड़ गए। सारा२ दिन उन्हें डर से परेशानी के दौरे पड़ते रहते। मुसलमान कुनबे सोचते कि अमृतसर से सिक्ख आएंगे, नीले रंग की पगड़ियों वाले, जिन के हाथ में ईस्पात के चक्र होते हैं। बब्बर अकाली—और हिन्दू औरतों को हर रोज़ शहर के मुसलमानों के सन्देशे पहुंचते रहते—हम एक२ हिन्दू सिक्ख को यहां से ज़िन्दा बच निकलने नहीं देंगे। —औरतों के दिल में भंवर पड़ते, मूर्च्छा आती। उन से न कोई घर का काम होता, न बच्चों की देखभाल होती। किसी में तिल भर जान न रही। एक रात को सोते में एक हिन्दू बाबू की बीवी ने चीखना शुरू कर दिया—"आ गए! मार गए! कोई दौड़ो—कोई आए!"—सारी बस्ती में कुहराम मच गया। और उस औरत ने तकिये को भुजपाश में लिया हुआ था। कई लोग तलवारें और गंडासे पकड़े हुए उधर दौड़े। चौखलाहट का आलम था—भगदड़मच गई।

जब भीड़ का जोश ठण्डा पड़ा तो उसने देखा—उन में मुसलमान एक भी नहीं था। पता नहीं किस तरह और किस समय—जिन की ड्यूटी थी—खिसक गए।

बाकी रात हिन्दू अपने मुहल्लों में पहरा देते रहे और मुसलमान अपने मुहल्लों में। अगले दिन दोनों ओर के आदमी एक दूसरे से रूठे-रूठे और अलग २ से रहे। फिर उस दिन के बाद हिन्दू न मुसलमानों की तरफ़ गए, न मुसलमान हिन्दुओं की तरफ़। अपनी २ गलियों में और अपने-अपने घरों में रखवाली करते रहे। एक दो दिन के बाद दोनों पक्षों में फिर मिलाप हो गया। यह नया तरीका जैसे दोनों को रास आ गया था। न एक पक्ष को लड़ना अच्छा लगता था न प्रतिपक्षी को। और इस तरह वे अपनी गली में अपने घर के समीप रह भी सकते थे।

ज्यों २ शहर में आग के अलाप भड़कते, ज्यों २ कतल की घटनाओं में वृद्धि होती त्यों २ हम एक दूसरे के लिये जान देने का प्रण करते। —"जो तुम्हारी तरफ आँख भर कर देखेगा, वह पहले हमारा वध करेगा—" मुसलमान पड़ोसी हिन्दुओं का सहस बढ़ाते और हिन्दू इस तरह की प्रतिज्ञा मुसलमानों के लिये करते। लेकिन रात को पहरा मुसलमान अपनी गलियों और घरों में देते और हिन्दू अपने हलके के मुहल्ले में।

लाहौर अभी जल रहा था। सुनने में आया कि अमृतसर के गुण्डों ने लाहौर के गुण्डों को चूड़ियां भेजी थीं—अमृतसर का बदला लाहौर में लिया जा रहा था।

लाहौर का गुस्सा अमृतसर में उतारा जा रहा था। मगर हमारी कालोनी में अभी तक किसी का दिल मैला नहीं हुआ था।

हम अभी तक एक दूसरे के भाई २ थे। पागलपन और गुण्डा गर्दी से हमारा अभी कोई वास्ता नहीं पड़ा था। हम में से कोई किसी का वध नहीं कर सकता था। चींटी पाँव तले आ जाए, तो हमारे दिल को कुछ हो जाता था।

रात को हम अपनी २ जगह पर पहरा देते। एक दूसरे को ऊंची २ आवाज़ों में पुकार कर चौंकाते। फिर हमें पता चला कि मुसलमानों ने नेशनल गार्डज़ के कुछ रज़ाकार बुलवा लिये हैं, लोग जानते थे कि नेशनल गार्डज़ वालोंने शहर में किस तरह आफत मचा दी थी--उन के पास हर किस्म के हथियार थे। मगर हमने शिकायत करने का साहस न किया। हमारे चौकीदार भी तो संघ से और न जाने किस २ श्रेणी से सम्बन्ध रखते थे। और हमारी कालोनी में न जाने क्या २ ज़हर उंडेलते रहते थे।

फिर भी हम सब पड़ोसी मां के जाए की तरह मिल कर शाम को बैठते थे। और लम्बे २ ठंडे २ सांस भर कर दुआएं मांगते अरदास करते कि किसी तरह यह बर्बरता समाप्त हो जाए। एक दूसरे को 'जी-जी' कहते हुए हमारा मुंह सूख जाता। बढ़ २ कर गरमजोशी के साथ हाथ मिलाते। एक दूसरे को ज़ोरों से आलिंगनों में लेते।

हर रोज़ पहरा देते २ हम थक गए, और रातें इतनी लम्बी होतीं कि खत्म ही होने में न आतीं।

एक रात को शहर में तनिक शोर कम था। और हम से रात नहीं कटती थी। हमने मिलकर गाना शुरू कर दिया। पहले हम भजन गाते रहे फिर शब्द। उधर हमारे मुसलमान पड़ोसियों ने हमारा गुर अपना लिया था और उन्हें भी आज का निश-जागरण सता रहा था। कितने दिनों के बाद शहर में ज़रा शान्ति हुई थी। उन्होंने भी नातें और ख़मसे पढ़ने शुरू कर दिये। हम ऊंची आवाज़ में पढ़ते तो वे हम से भी ज्यादा बुलन्द आवाज़ में। फिर हम उन से भी ऊँची आवाज़ में पढ़ने की कोशिश करते। हम सब मिल-जुल कर एक आवाज़ में गाते। जब हम उनकी आवाज़ सुनते, तो वह ज्यादा गम्भीर और बुलन्द होती। हम हैरान थे, हम संख्या में उन से ज्यादा थे; फिर हममें तो संघ और न जाने दूसरी श्रेणियों के सदस्य भी थे। लेकिन हमारी आवाज़ बड़ी खोखली और फीकी सी पड़ कर रह जाती। दया हुआ अगर वह मुसलमान थे? थे तो आख़िर क्लर्क ही? हमारी टोली और ऊंची आवाज़ में बोलती और ऊंची आवाज़ में गाती वे हम से लड़ थोड़े ही रहे थे—यूंही दोस्ताना शर्तें विदी हुई थीं। मुसलमान भी अपना सारा ज़ोर लगा कर तान उड़ाते फिर उनमें तो कई नेशनल गार्डज़ के रज़ाकार थे—जिन्हें हर बात की शिक्षा दी गई थी।

हमारे काफी साथी जो सो रहे थे, हम से आ मिले। हमने और भी जोश में गाना शुरू कर दिया। हमारे हाथ में तलवारें और लाठियां थी। हम उन्हें आपस में टकराते। नाचते और गाते। हमने कौमी गीत शुरू कर दिये। और

उधर हमारे मुसलमान भाई भी सागर की लहरों की तरह बढ़ते जाते। उनकी आवाज़ में खौफनाक तौर पर ढोल और बुलन्द होती जाती। उन्होंने भी कौमी गीत गाने शुरू कर दिये थे।

हमारी औरतें और बच्चे जाग उठे और मकान की मुंडेरों पर आ बैठे। जैसे कोई मैच हो रहा हो। दोनों तरफ खींचा-तानी बढ़ती जा रही थी। दोनों तरफ की औरतें और बच्चे जैसे अपनी अपनी टोली के साथ मिल कर गा रहे थे। जब कोई पक्ष उच्च गायकी में बढ़ जाता, तो उनकी तसल्ली सी हो जाती। बस, यूंही होता रहा—होता रहा।

गहरी काली रात थी। हाथ को हाथ सुझाई नहीं देता था। आस्मान पर तारे जैसे षड़यन्त्र रच कर छिप गए थे।

हमारे मुसलमान पड़ोसियों ने कव्वाली अलापनी शुरू कर दी। हम भी ढोलक उठा लाए, उसे ज़ोर २ से पीटते और शब्द गाते। कव्वाली गाने वाले ऊंची २ तानें उठाते और हम और भी ज़ोर से ऊधम मचाते। उस वक्त तक सब हिन्दू सिक्ख जाग कर इस तरफ इकट्ठे हो गए थे और यों जान पड़ता था, जैसे कुल मुसलमान उधर जमा हो गए हों।

दोनों ओर से आवाज़ ऊंची और अधिक ऊंची होती जा रही थी। कव्वाली की तानें और शब्द के बोल—उन की कोई सीमा नहीं रही थी, कोई मंजिल नहीं रही थी।

गाते २ नज़दीक की आबादी से 'अल्ला हो अकबर'

का नारा एक भयंकर और दहला देने वाला नारा, जैसे कुल शहर के कातल और खूनी वहां जमा हो गए हों। नारे का जवाब नारे से दिया गया। हमारी कालोनी के मुसलमान भी खुल कर पुकारते—अल्ला हो अकबर, !—हम उन से क्या कम थे ? हम ने उनसे भी ज्यादा भीषण 'सत श्री अकाल' का जैकारा गुंजाया और फिर उधर से एक और नारा उठा फिर इधर से एक और। फिर उधर से एक और बुलन्दतर, उधर से और भी बुलन्द—। नारे पर नारा लगना शुरू हुआ। बुलन्द और भी बुलन्द—सब से बुलन्द। ऐसा मालूम होता जैसे आसमान फट पड़ेगा, जैसे धरती कंप-कंपा उठेगी। दोनों पक्ष सुलग रहे थे, जोश में आ गए थे, नारे गोलियों की तरह छूट रहे थे। खौफनाक चिघाड़ों की तरह गरज रहे थे। सामने किसी मुंडेर पर से ऊंघता हुआ बच्चा नीचे आ रहा। उस के गिरते ही उस की मां ने चीख मारी और दोनों पक्ष उसी जगह टूट पड़े। फिर ज्ञान नहीं कि किस तरह पलक भर में तलवारें बजने लगीं, छुरियां दमकने लगीं, नेजे ऐंठने लगे—बम फटने लगे, गोलियां चलीं, तिजाब छिड़का गया, पेट्रोल के कनस्तर खाली कर दिये गए। खून की होली खेली गई, अतिशबाजी छूटने लगी। मासूम क्लर्कों की कालोनी तमाम रात जलती रही। गाए की तरह सीधे-सादे क्लर्कों के बच्चे पुर्जा २ कर दिये गए। गरीब क्लर्कों की बीमार बीवियां गंडासों से कटती रहीं और खुद क्लर्कों ने मर २ कर नालियां पाट दीं—गलियां उनकी लाशों से अट गईं।

बजीराबाद के स्टेशन पर

ठीक एक बजे गाड़ी बजीराबाद के स्टेशन पर पहुंची। तेज़ी से चलती हुई गाड़ी की छकाछक से मेरे कान अभ्यस्त हो चुके थे। यह अचानक चुप्पी अजीब सी अनुभव हुई, मेरी आंख खुल गई।

तीसरे दरजे के इस छोटे से डिब्बे में सिरफ बीस मुसाफिरों के लिये जगह थी, लेकिन छोटे-बड़े सब मिला कर पैंतीस के लगभग आदमी इस में बन्द थे। जिन्हें सीटों पर जगह न मिली, वे नीचे ही बैठ गए। और कुछेक सामान रखने वाले ऊपरी तख्तों पर चढ़ गए। मेरी दाईं ओर वाली सीट पर बिस्तर बिछा कर एक हिन्दू बाबू गहरी नींद सोया पड़ा था। गाड़ी चलते समय बहुत से मुसाफ़िर चीखे

चिल्लाए, लेकिक इसने एक इंच भी जगह खाली न की.....
दूसरे कोने में एक बूढ़ा सो रहा था, जिस के खराटों की आवाज़ क्रमानुसार ऊंची होती जा रही थी.....एक गढ़वालिया नौकर ऊंघता हुआ साथी मुसाफिर के कन्धे पर गिर रहा था। उस की आंखें बन्द और मुंह खुला था। एक राल बहती हुई जम की ठोडी तक पहुंच चुकी थी। अधेड़ पूरबन की नाक चप्टी थी, एक आंख काणी थी। काले कलूटे चेहरे की हड्डियां बाहर निकली पड़ती थीं। समान के पास पड़ी वह एक बोरी पर सिर रखके सो गई थी। उसका काला-कलूटा बच्चा जोंक की तरह उसकी सूखी छातियों से चिमटा हुआ था। "अबकी बार माफी दे दीजिये बाबू जी।"—बीच वाली सीट में घुटनों पर सिर जमाए सोया हुआ माली बुड़बुड़ा रहा था—— सीट के नीचे इस तरफ एक माझे का सिक्ख जाट चौपट पड़ा था, उसकी आधी खुली हुई आंखें डरावनी सी थीं। मुंह बन्द था। एक बज़नदार गठरी खिसक २ कर उसकी छाती पर आ टिकी थी। जाट जब अपने फौलादी फेफड़ों में सांस भरता, तो गठड़ी की दुनियां में तूफान सा आ जाता।

गाड़ी बहुत देर तक खड़ी रही चलते समय सर्दी से बचने के लिये हम ने सब दरवाजे और खिड़कियां बन्द कर लिये थे। इस चुपचाप और इन्सानी सांसों से गर्म वातावरण में आखिर मेरा दिल तनिक घबराने लगा। मैंने अपने समीप की खिड़की खोल ली और बाहर देखना शुरू कर दिया। घुप अन्धेरा था। यों जान पड़ता था कि प्लेट-फारम के लैम्पों

की रोशनी अपने बलबों के साथ संघर्ष करके बाहर निकलने के प्रयास में है। रेलवे के एक दो नौकर जल्दी २ इधर उधर घूम रहे थे। न कोई मुसाफिर स्टेशन पर उतरा और न कोई स्वार हुआ।

"वक़्त क्या होगा, सरदार साहब ?" मेरे समीप लेटे हुए किसी अंग्रेज़ अफसर के बेरे ने चौंक कर पूछा—

मैं ने कहा—"एक"

वह चुप हो गया—

"क्यों, साहब को थपकने जाओगे क्या ?" – मैंने मज़ाक से कहा—। बूढ़ा पहले तो मेरी बात न समझ सका, फिर कोई दो मिनट बाद आप ही आप मेरी ओर देख कर मुस्कराया और तख्ते पर सिर रखके सो गया।

लाहौर से चलने के बाद जब तक उसका मालिक जागता रहा, वह फस्ट-क्लास के डिब्बे की ओर चक्कर लगाता रहा—"क्या करें सरदार जी; नौकरी ठहरी ?"–उस ने फिर आंखें खोलीं और लेटे ही लेटे बोला—"पहली बार गया, तो बूटों के फीते खोले, मोज़े उतारे और तलुवे सहलाता रहा। दूसरी बार गया, अखबार का एक पन्ना सीट के नीचे गिर पड़ा था उठा कर साहब को दे आया। काम तो कोई अधिक नहीं, लेकिन हाज़री पूरी २ देनी पड़ती है।"

सर्दी बढ़ रही थी, मैंने खिड़की बन्द कर ली। सब के पास कंबल या लोई, मतलब यह कि ओढ़ने के लिये कुछ न कुछ ज़रूर था। केवल मैं ही एक ऐसा मुसाफिर था जो नसवारी रंग का एक सूट पहने था। इस के इलावा मेरे पास

एक चमड़े का अटैची केस था, जिस में कुछ रसाले और कुछ कागज़ात पड़े थे। कागज़ों पर कुछ लिखा हुआ था और फिर कटा हुआ।

"चाय गरम! हिन्दू-चाय! चाय गरम!"—कोई पुकारता हुआ हमारे कमरे के पास से गुज़र गया। मैंने जेब में हाथ डाला, जेब खाली थी। मुझे याद आया, चलते समय पैसे निकाल कर मैंने अटैची केस में रख लिये थे। बड़ी कठिनता से मैंने उसे खोला मेरे साथी मुसाफिर ने अपनी कुहनी आमरे के लिये रक्खी हुई थी। चाय वाला इतनी देर में आगे बढ़ गया। खिड़की खोल कर मैंने उसका इन्तजार शुरू कर दिया।

काला कोट पहने एक लम्बे कद की लड़की हमारे साथ वाले ज़नाना कमरे में से निकली। दूर बरामदे में गार्ड एक छोटा लैम्प लिये टहल रहा था, वह जल्दी २ उस की ओर चली गई। कुछ देर दोनों बातें करते रहे। फिर लड़की ने जेब में से एक कागज़ निकाला, लैम्प की मामूली रोशनी में दोनों झुक २ कर उसे पढ़ने की कोशिश करने लगे। जब उसने चिट्ठी को तह करके जेब में डाला, तो जवान गार्ड ने लैम्प उठा कर उसके चेहरे की ओर देखा। कुछ देर बाद लड़की गाड़ी की ओर आ गई, गार्ड भी उस के पीछे २ चल दिया।

चाय वाला वापस आ रहा था। अभी तीन चार डिब्बे दूर ही था कि मेरे दिल ने कहा—"मै चाय नहीं पियूंगा, कल ही तो डाक्टर ने मना किया था? कुछ पीना हो तो

'कोको' पियो, कॉफी पियो, चाय तुम्हारे लिए ज़हर है। आखिर यह आंतों की गड़गड़ भी तो खतरनाक है ?"—मैं डर गया, मैंने निश्चय कर लिया कि चाय नहीं पियूंगा। इलाज के साथ २ बदपरहेज़ी, यह कोई अक्लमन्दी नहीं। यूं भी पढ़ने लिखने वाले लड़कों के लिए चाय कोई अच्छी चीज़ नहीं—"चाय अच्छा चीज़ नहीं है ! चाय चर्बी पिघला देती है।"—जब मै दूध की जगह चाय का आग्रह किया करता था तो मेरी माता जी समझाया करती थीं।

"चाय गरम। हिन्दू चाय! चाय गरम!"—चाय वाला हमारे कमरे के सामने से गुज़र गया। मुझे याद आया कि 'कोह मरी' में वीणा किस तरह मेरे लिये चाय बनाया करती थी ? छिप छिप के हम गैलरी मे बैठ जाते, किस तरह वह चमचा २ मेरे मुंह में डालती। वीणा की चाय कितनी अच्छी होती थी। वह चाय भी चर्बी पिघला दिया करती थी ? एक २ चमचा शराब की तरह नशीला होता था।"

सारे का सारा कमरा सुन्न हो गया। सारे के सारे मुसाफिर अपनी २ जगह पर सिकुड़ने लगे। स्वयं मैं सर्दी से ठिठुरा जा रहा था। मैंने खिड़की दोबारा बन्द कर ली। इस पर भी मैं कांप रहा था—"क्या हरज है, अगर एक प्याली पी ली जाए, कोई चस्के के लिये थोड़ा पीने लगा हूं !"—चाय का पलड़ा फिर भारी हो रहा था—"इस सर्दी में किस तरह रात कटेगी ? न मेरे पास कुछ ओढ़ने को, न बड़ा कोट ! चाय में दूध पड़ता है, चाय में शक्कर पड़ती है। बस, दो पत्तियों के लिये चाय बुरी हो गई ? मैं नहीं मानता।

कैसी फ़िज़ूल बात है ? सारी दुनिया चाय पीती है, गर्व से लोग चाय के निमन्त्रण भेजते हैं और खुशी से उनमें भाग लेते हैं। केवल मेरे लिये ही चाय खराब हो गई ? यूंही डाक्टरों की आदत है, कोई कड़वी दवाई दे दी, पांच सात चीज़ों से परहेज़ बता दिया। और बस, फिर एक प्याली से कौन सी प्रलय आ जाएगी ? इस पेट में तो पत्थर भी गल जाते हैं, गर्म २ चाय की प्याली से सारी रात आराम रहेगा।"

मैंने खिड़की फिर खोल ली, चाय वाला गाड़ी का चक्कर काट कर वापस आ रहा था। मैंने सिर बाहर निकाल कर देखा—वह काफी नज़दीक पहुंच चुका था। "मगर... ...मेरे अन्दर आवाज़ उठी—"मगर कष्ट की बात नहीं, चाय पी ली, तो सारी रात नींद नहीं आएगी ? पहले भी जब कभी भूल-चूक कर रात को चाय पी ली, सारी रात आंख नहीं लगी। एक ही दिन के लिये पिण्डी जा रहा हूँ। सारा दिन रात नहीं, क्या २ काम करते हैं। चाय बगैर ही अच्छा हूं, शायद बैठे २ आंख लग जाए।"

"चाय गरम ! हिन्दू चाय ! चाय गरम!"—चाय वाला गुज़र गया। गुज़रते २ उस ने मेरी ओर देखा—मैंने उसकी ओर देखा—ये जान पड़ता था, जैसे उसकी आंखें कह रही हैं—सरदार साहब ! पीनी है तो पी लो ! दिल तो आपका चाहता है, बार २ मुझ से न आया जाएगा।

इतनी सख्त सर्दी में इस दिमागी संघर्ष के कारण मेरे हाथों में पसीना आ रहा था। मुट्ठी में पकड़ी हुई इकन्नी

मेरी हथेली के साथ चिपक रही थी।

"पी लेता तो पी लेता!"—मेरे दिल में से कोई कह रहा था—

"चलो, नहीं पी, तो कौन का जुलम हो गया।" किसी दूसरे विचार ने मेरे अन्दर से कहा—

"लेकिन सर्दी कड़क रही है, अभी ठंड और पड़ेगी जेहलम के उस पार।"

"फिर लूंगा, किसी दूसरे स्टेशन पर।" इकन्नी मैंने कोट की जेब में डाल ली। बदमज़ा सा होकर मैं खिड़की बन्द कर रहा था कि काले कोट वाली लम्बी-तड़ंगी लड़की हमारे कमरे के सामने से गुज़री। खूब खिली हुई थी, उस के गुलाबी चेहरे से सफलता सी टपक रही थी।

"चाय वाला गुज़र गया है सरदार जी?" मेरे पास लेटे हुए बैरे ने मुझसे पूछा—"फिर आए तो उसे ज़रा खड़ा करना!"

"मैं भी पी लूंगा!" झट से मेरे मन में विचार कौंदा। काले कोट वाली पतली-लम्बी लड़की कितनी गर्म थी?

"नहीं! बिलकुल नहीं! इतना दुर्बल विचार?" किसी और ने मेरे अन्दर से कहा—

"क्यों बाबा? तेरा क्या विचार है? चाय अच्छी चीज़ है या बुरी?" मैंने बैरे से पूछा, जो चायके इन्तज़ार में कभी आंखें मींचता, कभी खोलता।

"बुरी? खाने पीने की चीज़ भी कभी बुरी होती है? साहब लोग तो जितनी बार मिल जाए, इन्कार नहीं करते।

मैं खुद दिन में तीन बार पीता हूं, चाय तो ... ... ।"

"मगर मुझे तो डाक्टर ने मना किया है।"

"फिर तो ... ... फिर तो दूसरी बात है।" सिर हिलाते हुए उस ने सोच कर उत्तर दिया—

"चाय गरम ! हिन्दू चाय ! चाय गरम !"—चाय वाला आ रहा था। बैरा उठ कर खिड़की से बाहर झांकने लगा—

"जो गरम हो, तो एक प्याला देना भाई।" उसने चाय वाले को खड़ा कर लिया।

हिन्दू चाय वाले ने बैरे की ओर संदिग्ध नज़रों से देखा ! रटैण्ड पर ट्रे रखते हुए उसने ज़ोर से पुकारा—"हिन्दू चाय ! चाय हिन्दू !

असली बात दोनों समझ गए, मगर दोनों चुप रहे। "वाहवा ! जीते रहो ! खूब गरम है।" बैरे ने एक घूंट भर कर नौजवान हिन्दू चाय वाले से कहा—

हिन्दू चाय वाला चुप रहा।

मेरे मुंह में पानी भर आया, मुझे और अधिक सर्दी लगने लगी। मैं चाय पीते हुए बैरे की ओर देखे जाता था। हिन्दू चाय वाला मेरा ओर नाक लगाए हुए था। मेरा दायां हाथ पतलून की जेब से निकल कर स्वयंमेव उठा जा रहा था।

"नहीं !" जैसे किसी ने झुंझला कर मेरे अन्दर से कहा—

मैं सोचने लग गया। सोचता रहा—सोचता रहा! आखिर उकता कर मैं गुसलखाने में चला गया। कोई तीन मिनट बाद जब मैं वापस आया, तो बैरा अभी तक चाय पी रहा था। हिन्दू-चाय वाले ने मेरी ओर आखिरी बार देखा—जो पीनी है, तो पी लो सरदार जी! मेरे दो आने बन जायेंगे। सारी रात जागता रहा हूँ, मेरे छोटे २ बच्चे घर में बिलख रहे हैं, उन के मुंह में कुछ पड़ जाएगा। हम मियां बीवी भी पेट भुज्जस लेंगे।"

गुसलखाने में हाथ धोने से मुझे और ज्यादा सर्दी होने लगी। बैरा गरम २ चाय पी रहा था। उसका चेहरा लाल होता गया। उस के माथे पर पसीने के कतरे से आ गए थे। हिन्दू चाय वाले ने निराश हो कर अपनी नज़रें झुका लीं। उस का कोट फटा हुआ था, उसकी कमीज़ के ऊपर के दो बटन टूट हुए थे। उसकी छाती नंगी दीख रही थी। अभी ठण्डक और बढ़ेगी जेहलम के उस पार।

"एक प्याला मुझे भी दे दो भाई!"—आखिर मैं ने धीरे से कहा। हिन्दू चाय वाले ने अपनी मुस्कान छुपाने की बहुत कोशिश की लेकिन न रोक सका।

"मुझे मालूम होता था, तुम पियोगे! मेरा अनुमान कभी गलत नहीं हुआ!" प्याली मुझे पकड़ाते हुए उस की आंखें कह रही थीं!—

चौधरानी गुरां दई

चौधरानी गुरां दई जहां तक हो सकता, सारे का सारा घर का काम स्वयं करती। चाहे बहू नौकर दोनों ही थे, तो भी उसे किसी के किये काम पर विश्वास न आता था। दूध-दही, रोटी-पानी, और छोटा-मोटा सारे का सारा काम उसने सिर लिया हुआ था बेचारी रात को थकी टूटी खाट पर जा पड़ती और लेटते ही गहरी नींद सो जाती।

प्रायः अभी मुंह-अन्धेरा ही होता कि चौधरानी जी जाग उठा करतीं थीं लेकिन आज कुछ असाधारण कारण से हलकी २ रोशनी फूटने पर भी वे सोई रहीं।

"आज शानो का सम्बन्ध जोड़ दूं, तो कल अम्बरीक के लिए बगली दबाए लड़की ढूंढती फिरूं, यही है न आपकी मर्ज़ी ?"

"भगवान ! अम्बरीक की बारी कौन आने. किस राजा की प्रजा हो ? अभी तो बेचारा पक्की-पहली अब फेल हुआ है; आप ही जब मिडल पास करेगा, तो देख लेंगे।"

"तो फिर वह फेल ही होता रहेगा और हम ने उसे ब्याहना ही नहीं ? गरीबों के बच्चे छोटी उमर में ही ब्याहे जाते हैं और बड़े साहूकारों को मिडल पास करवाने की ही पड़ी रहती है। कहीं सग-विलाप पर जाएं, तो औरतें पूछ २ लज्जित कर देती हैं—फिर बूढ़ा करके ब्याहना है ?—हमने तो भई ! शानो के साथ अम्बरीक का ब्याह करना है और परिक्रमा भी साथ ही दिलवा लूगी। ब्याह करके पढ़ता रहेगा, कहीं भाग तो जाना नहीं इसने।"

"अच्छा, जैसी तेरी मर्ज़ी। दूधी उमर में सांस का भी क्या ठिकाना। आए आए, न आए न आए !"

चौधरानी गुरां दई अचानक जाग उठी। जो सोए २ उसके थोड़े से खुले मुंह में से पानी निकल आया था, अंचल से पोंछ, उसकी आंखें फिर मिच गईं और "वाहगुरु २" की आवाज़ सुनाई दी।

"शानो के पिता जी सुपने में आए, कैसी अभागिन हूं मैं, वही घर का रोना रोती रही।" चौधरानी ने अपने दिल में सोचा—"कोई सुख-शान्ति पूछती, उनका ठौर-ठिकाना पूछती। हमें भी तो बुलाने वाले ही हुंगे !"

चौधरानी की आंखों के आगे से उस का विवाहित-जीवन सारे का सारा एक चित्रपट की तरह गुज़र गया। सगाई होने के बाद वे दिन, जब चौधरियों के घरों से आए

नौकर-चाकरों को भी वह हसरत की दृष्टियों से ताका करती थी। जब एक दिन उन के खेतों में चरती हुई 'लाखी' के बदन पर उसने हाथ फेरा और फिर उस की थुथनी को छाती से लगा लिया था। वह दिन, जब घूंघट उठा कर 'जीतू' ने अपनी भावी को झात (हंसी) बुलाई, फिर वह दिन, जब आम तले ऐकान्त में अकेले शाम सिंह ने एक कौर गुरां दई के मुंह में भी डाल दिया था—और फिर वह दिन, जब दो महीने के बच्चे अमरीक सिंह को छाती से लगा कर शाम सिंह ने कहा था—"कितना मधुर है, कितना प्यारा है?—और वह आखरी बार, जब गुरां दई का हाथ उसने छाती पर रक्खा तो श्वास त्याग दिये!—

चौधरानी की आंखों में आंसू आ गए। टप २ करके आंसू छलछला रहे थे, जब वह खाट पर से उठी—और फिर कोठे से नीचे उतर गई।

चौधरी सावन सिंह को मरे आज साल से ऊपर होने लगा था, अब तक इलाके के लोग उसे याद करते थे। उसकी शेरों वाली गरज का डर अभी तक असंख्य दिलों में बैठा हुआ था। उसकी घोड़ी ने इस बार भी मंडी में पहला इनाम लिया। नहर का बड़ा अफसर जब इस बार दौरे पर आया, तो चौधरी सावन सिंह की मौत सुन के उसकी आंखों से आंसू फूट निकले। तकिये (मुस्लिम-समाधि) पर भी अब वैसी रौनक नहीं थी। चौधरी की मौत से यूं लगता था, जैसे सारे का सारा गांव ही अनाथ हो गया हो। चौधरानी चाहे लड़के-लड़कियों और बहुओं वाली थी, खाने-पीने को

भी ईश्वर ने दिल खोल कर दिया था; दस मुरब्बे ज़मीन और दूसरा साहूकारा भी बेहिसाब था—लेकिन पति की पातशाही कुछ और ही चीज़ थी, जो उस से हमेशा के लिए छिन गई।

यह भ्रम गावों में साधारण है कि रात को जो भी नज़दीकी रिश्तेदार सुपने में आए, तो उस की आत्मा को तृप्त करने के लिए एक बार की रोटी गुरुद्वारे के पाठी को खिला दिया करते हैं। चौधरानी भी उठते ही अपने अवश्यक कामों से अवकाश पाकर स्वच्छ कपड़े पहिन, चौंका लीप-पोत कर, पाठी जी के लिये प्रसाद तैयार करने लगी। खोर गुच्छियाँ और पनीर आदि जो २ चीजें चौधरी जी को भाती थीं, एक २ करके उसने बड़े प्यार से बनाई। बनाते २ उसे कई बार यों लगता, जैसे अभी बाहर ड्यूढ़ी में से आवाज़ देंगे—"शानों की मां! रोटी तयार है?" - कई बार जब उसका पल्लू सिर से खिसक जाता, झट ही वह सहमी २ सिर पर रख लेती। बार २ उसकी आँखें सजल हो जातीं, लेकिन अनपूछे आंसू आप से ही पलकों में सूख जाते। कोई लगभग दस बजे खाना तैयार हुआ, एक २ करके सारी चीजें चौधरानी ने थाली में परोसीं और आप ही उठा कर गुरुद्वारे को चल पड़ी। रास्ते में उसे ऐसा जान पड़ा कि वह फिर जवान हो गई है, और दूर खेतों में अपने पति को खाना खिलाने जा रही है। फसलों की ओट में बैठ कर की हुई बातें उसे याद आतीं। सावन सिंह का कई बार रूठना और गुरां दई का मनाना, नीम की ठंडी छाया, उन का एक

दूसरे के पास से उठने को दिल न मानना और आने वाले बच्चे की प्रतीक्षा—ये सारी बातें फिर से नई बन कर उसके सामने घूमने लग गईं।

इन्हीं विचारों में डूबती—उभरती चौधरानी गुरद्वारे पहुंच गई। यह गुरद्वारा चौधरी जी के वक्त में ही बनाया गया था और इसका ग्रन्थ-पाठी उसके अपने हाथों का रक्खा एक अनपढ़ा सा पहाड़ी था। चौधरानी ने छोटी सी अरदास की और माथा नवा, पाठी जी को प्रसाद के लिये कहा। पाठी जी किसी पुस्तक का पाठ कर रहे थे, झट से उन्होंने भोग डाला और हाथ मुंह धोके प्रसाद के लिये तैयार हो गए।

चौधरानी ने लोटे वाली छाछ गिलास में उंड़ेली, पात्र में पड़ा मक्खन रोटी के ऊपर रखके थाली पाठी जी के आगे आन धरी।

"आज रात सुपने में चौधरी जी आए थे!"—चौधरानी ने बात शुरू करते हुए कहा—

पाठी जी ने भोजन करते कोई बात करनी अनुचित समझी और मौन रहे। वे प्रसाद छक रहे थे, चौधरानी बड़े प्रेमभाव से उनके समीप बैठी पंखा डुला रही थी। गांव के गुरद्वारे में सवेरे ही कोई नहीं आता और अब तो काम-काज का समय था। सारे के सारे गुरद्वारे में सन्नाटा छाया हुआ था। पंखा हिलाते २ चौधरानी की आंखें बन्द हो गईं।

पाठी जी की दाढ़ी पहले लम्बी होती गई, फिर उस के सब बाल सफेद हो गए। उसके सिर पर बन्धी नीली

सी पगड़ी का रंग भी चिट्टा-दूधिया हो गया और आंख झपकते वह बड़ा सा पगड़ बन गई। उस के शरीर पर 'लुधियाने' (कपड़े की किसम) की कमीज़ की जगह 'टस्सर' का एक चोगा बन गया। उसके गले में एक दुपट्टा भी लिपट गया—उसका पायजामा भी चूड़ीदार हो गया।

चौधरानी पखा कर रही थी। कमरे की छाया उसे अपने आंगन में लगे आम के वृक्ष की शीतलता सी अनुभव हुई। पंखा हल्का होता गया—फिर रुक गया—आखिर आहिस्ता २ हाथों से खिसककर नीचे गिर पड़ा—"थके-टूटे सारे दिन के फसलों से आते हैं, क्यों न दबा दूं ?'—उस के हाथ पाठी जी की पिंडलियों को अभी छुए ही थे कि चौधरानी की झट से आंखें खुल गईं।

वह घबरा सी गई। —"डो डो—हट शी २—"एक कोने में पड़े दानों को चिड़ियां—कौए चुग रहे थे, पंखा उठा कर चौधरानी उन्हें हटाने शीरती हुई उठ खड़ी हुई।

पाठी जी प्रसाद छकते रहे।

माणू मलियार

धमियाल पोठोहार का एक विशेष गाँव है। इस गांव के दक्खनी-पच्छिमी प्रदेश में एक बहुत सुन्दर कुआँ है। इस कुएं के पास एक तरफ गुफाएं बनी हुई हैं और दूसरी तरफ धमियाल की नदी बहती है, जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि वह उल्टी बहती है। यही कारण है कि अगर कभी धमियाल का निवासी कोई अजीब हरकत करे, तो नदीकी देहातों के वासी नाक भौं चढ़ा कर कहा करते हैं—"ये लोग उल्टी नदी वाले!"—धमियाल के इस कुएं पर पहले एक बाग था, जिसमे माली काम किया करते थे। यह उस ज़माने की बात है, जब मैं शायद पैदा भी नहीं हुआ था। मेरी बचपन की याद में इस बाग के पुराने खंडहरों का एक धुन्धला सा नक्शा ही बाकी है। एक बटंग का पौधा, जिसे बाद में

काट डाला; एक खट्टों का पौधा, जो मुद्दत तक प्यासा रह कर मुरझा गया।

मेरे कालेज के ज़माने में इस बेचारे की तरफ़ फिर एक व्यक्ति ने ध्यान दिया। यह व्यक्ति संसार की सभी सुन्दरताओं पर जान देने वाला 'माणूं' था। माणूं पहले तेली था, लेकिन वह पेशा उसके कला-प्रिय स्वभाव को रास न आया। तेल से चिकटे हुए कपड़ों वाला और 'खली' के डलों के संसार में रहने वाला तेली माणूं न बन सका। माणूं ठेकेदार बन गया। जहां कोई मकान बन रहा होता या गवर्नमैंट की बारकों का निर्माण हो रहा होता, वह भट्टे से ईंटें पहुंचाने का काम प्राप्त कर लेता। उसने एक बहुत सुन्दर गाड़ी बनवाई और बैलों की जोड़ी हमारे सारे इलाके में मशहूर थी। कई और लोगों को भी उसने अपने साथ काम पर लगाया। सुन्दर, जवान और अलबेले लड़कों को माणूं के साथ काम करने में सुख अनुभव होता था। मुझे माणूं की ठेकेदारी के वे दिन याद हैं, जब वह कभी कभी ऊंची आवाज़ से 'माहिया' गाता आधी रात को अपनी बैलगाड़ी वापस लाया करता था; लेकिन ठेकेदारी की उलझनें और झमेले उसकी रस की प्यासी तबीयत पर बोझल होने लगे। उसके दिल ने आखिर विद्रोह किया और उसने ठेकेदारी को तिलांजलि देकर गांव के इस वीरान कुएं की देख-भाल अपने ज़िम्मे ले ली।

माणूं ने युगों के सूखे हुए वृक्षों को मलियार बन कर फिर से हरा-भरा कर दिया। चिर-विषम धरती को रस

ने परिश्रम से समतल किया और हर तरह की सब्ज़ियां और हर तरह के फूल लाकर उसने बाग़ में लगाए। कुएं को खोद कर गहरा किया और पानी निकाला। सारी धरती को जलमय करके जंगल में मंगल कर दिया। कभी-कभी वह कहा करता - "यहां ऐसी रौनक पैदा करूंगा कि एक बार आस्मान से अप्सराएं और परियां उतरने लगें!" बहुत तलाश के बाद आखिर माणूं ने अपना मनचाहा काम ढूंढ लिया। वह सारा-सारा दिन बेल-बूटों में उलझा रहता और अपनी रूप की प्यासी तबीयत को स्नेहिल करता रहता। माणूं तेली से ठेकेदार बना और कुछ समय बाद हमने माणूं मलयार कह कर पुकारना शुरू कर दिया। वह अपने को मलयार कहलवा कर खुश होता। फूलों, फलों, हरियावल और कुएं की बहती जल-धाराओं में रहने वाला मलयार!

माणूं की पत्नी जीवित थी, थी भी बहुत सुघड़ और सयानी! उस के तीन चार लड़के भी थे। उस पर भी माणूं ने दूसरी शादी कर ली। मैं बहुत हैरान था, कभी-कभी मुझे उस पर क्रोध भी आ जाता। मेरे साथ वह सदा खुली खुली बातें किया करता। एक दिन मैंने उस से पूछा वह बहुत लापरवाही से मेरे कन्धे पर हाथ रख कर बोला— "बाबू बात यों है, एक तो लड़की थी ही छबीली, दूसरे उस का नाम बहुत अच्छा था। 'दर्दानी' नाम किसी-किसी का होता है। फिर उसकी भी मर्ज़ी थी और—मेरी भी मर्ज़ी थी। एक दिन वह कुएं से पानी लेकर आ रही थी। दो घड़ियां उसके सिर पर थीं। मैंने एक ही बन्द गाया—

हत्थे विच आना ई !
सिर ते दो घड़ियां, लक भूटे खाना ई !!

(मेरे हाथ में इकन्नी है। तेरे सिर पर दो घड़े हैं और तुम्हारी कमर बल खा रही है)

तीर निशाने पर बैठा, अब वह मेरे पीछे-पीछे फिरने लगी। पहले तो मैंने तुम्हारी भावज से ज़िकर किया—उसे भी बहुत भाई। उसने स्वयं बीच में आकर 'निकाह' पढ़वा दिया।

मैं हैरान हुआ, लेकिन ज्यादा हैरानी मुझे माणूं की पहली पत्नी पर थी। उस पर उसने मुझे बताया कि कुएं पर काम करने के लिए दो स्त्रियां कम हैं। उसकी पत्नियां किसी दूसरी लड़की की खोज में थीं। जब भी कोई हाथ लगी और उसकी मर्ज़ी भी हुई, तो वह तीसरा ब्याह करेगा। यह बात सुना कर उसने मुझे और हैरान कर दिया।

माणूं मलयार बहुत परिश्रमी था। किस शौक़ से वह दिन-रात अपने काम में लगा रहता था। ६ महीने के अन्दर-अन्दर उसने बाग़ का रंग बदल दिया। उसके हाथों में कुछ ऐसी बरकत थी कि जो फूल उसने लगाए—दुगने-चौगुने हो कर फूले। जो सब्ज़ी उसने लगाई, इतनी पैदा हुई कि उसका घर-बार हरा-भरा हो गया। सवेरे जब वह अपनी छत पर नींद से जागता, तो बहुत देर तक अपने बाग की बहार निहारता रहता। वह देखता रहता—कि उसके शहतूतों के फल कुतरने वाले तिज़ियर और उसकी बेरी के बेर कुतरने वाले तोते किस ओर—से अधिक आते हैं। जब वृक्षों

के नीचे जा कर वह धरती को फूलों से अटा हुआ पाता, तो बहुत क्रोधित होकर आकाश की ओर आंखें फाड़-फाड़ कर देखता रहता। "ईश्वर! इन बेज़बान—पंछियों का क्या इलाज करूं?" कभी-कभी वह हाथ मलता हुआ अपनी पत्नियों से कहता—"ये पंछी तो कुछ न छोड़ेंगे।"

माणूं मलियार के फूल-वृटों पर लगे-लगे सूख कर झड़ जाते। लेकिन वह किसी को उन्हें छूने न देता। यहां तक कि कुएं के मालिक सरदार का नन्हा सा मासूम बच्चा एक बार एक फूल तोड़ने लगा, माणूं ने उसे रोक दिया। बच्चा हसरत से उसके मुंह को ताकता रहा। लेकिन उसे बिलकुल दया न आई। वह सोचा करता—'ये फूल मेरे बेटे हैं, इनकी रगों में मेरा खून है, अपनी सन्तान को भी कभी कोई कष्ट पहुंचने देता है?"

कुएं पर चलने वाले बैलों को उसने ऐसा सिधाया हुआ था कि जब तक वह बाग में उस के पांवों की आहट सुनते रहते, न कभी खड़े होते न अपनी चाल में अन्तर आने देते। कुआं चलता रहता, माणूं या तो मेड़ोंको बनाता रहता, या नालियों में बहते हुए मोतियों जैसे पानी को ताकता रहता।

उसकी कोई न कोई पत्नी उसे यों उलझे हुए देख कर कहा करती—"क्या सोच रहे हो?"

वह हंस देता और कहता—"दर्दानी! देखो न! इस पानी की एक-एक बूंद से इन पौधों में दस-दस तोरियां आएंगी, लम्बी-लम्बी कोमल-कोमल तोरियां—"

उसकी आंखों में मस्ती होती और ओठों पर मुस्कराहट। उसे अपने पानी पर गर्व था—उस पानी पर, जिसे उसने स्वयं कुएं की गहराई से खोद-खोद कर निकाला था।

मैं गांव से बाहर रहा करता। कभी-कभी वर्ष में एक-दो बार अपने सम्बन्धियों से मिलने के लिये गांव में चला जाया करता और जब तक वहां रहता; सारे के सारे गांव का मेहमान होता। सब लोग मेरी अतिथि-सेवा में भाग लेते और मेरे कभी-कभार गांव में आने का लिहाज़ रखते। माणूं भी मेरा ख़ास प्रेमी था। कई बार मुझे पास बैठा कर इधर-उधर की बातें करता रहता और मेरी फरमाइश पर कानों पर हाथ रख कर 'माहिया' भी सुना दिया करता, और जब कभी वह चाहता, यह भी बता दिया करता कि अमुक बन्द उसने कब और कहां गाया—माणूं शायर भी था। बहुत बार उसने मुझे अपने बन्द सुनाए, जिन्हें वह सच्चे प्यार की 'सिहर्फी' सी कहा करता। उसकी कविताओं के आखिरी बन्द में यह होता—

माणूं कहे मलियार तुमीं सच मन्नो!
[माणूं मलयार कह रहा है, आप सच मानें!]

बावजूद इन सब बातों के अगर मैं कभी इस कुएं पर नहाने लगता तो वह मेरी आंख बचा कर साबुन की टिकिया कहीं छिपा देता। किसी ने उसे कहा था कि, साबुन की सुगन्ध से पौधों पर छाया पड़ जाती है।

माणूं साधारण मलियार के समान रंग-गन्ध का जन्मदाता ही न था, बल्कि सच्चे अर्थों में बाग़ की हरेक

रंगीनी का रखवाला था। जब झञ्झायें उठतीं, आंधियां चलतीं, जोरों की बारिशें होतीं तो सारा-सारा दिन उसका कलेजा धक-धक करता और वह तेवरी चढ़ाए रखता। उस के बूटों में अनार आते, तोतों से बचानेके लिये उसने थैलियां चढ़ा दीं। कई कमज़ोर पौधों को चिलमिलाती धूप के ताव से बचाने के लिए उसने छप्परों से ढक दिया। वह फलों की बाड़ी में जाता, तो हर बेल को बड़े प्यार से उठाता और उस पर नन्हा-नन्हा फल आया होता—उसे यों ताकता—जैसे किसी दुल्हिन की प्रदर्शिनी-प्रथा पूरी हो रही हो। स्नेह के उबाल में कभी कभी 'सदवर्ग' की फूलों से लदी हुई शाखाओं को सीने से लगा कर भींचता। मेंढ़ों पर वह चोरों की तरह यों चलता कि उसके चरणों की चाप तक न सुनाई देती। जैसे छिप-छिप कर भेद की बातें सुनता है। उसका दिल चाहता था कि कभी किसी कली को खिलते हुए ताके। जब तोते या दूसरे पंछी उस के फलदार वृक्षों के फलों को कुतर-कुतर कर नीचे फेंकते, तो वह वृक्षों के तनों से लिपट जाता और कहा करता कि मुझे इनके दर्द की टीसें सुनाई देती हैं कभी-कभार जब कोई कोयल उसके उपवन में आकर कूकती, तो वह बहुत सन्तुष्ट होता। वह हर समय ऐसे गरूर में रहता, जैसे कोई बहुत ऊंचे व्यक्तित्व वाला मेहमान उस के यहां आया हो। जब कोयल अपने दिल में हूक भरने वाली 'कूकू' शुरू करती, तो उसके आँगन मे चिड़िया भी पंख न फड़फड़ा सकती। किसी शिशु को बोलने का साहस न होता।

जब कभी-कभी वह काम करते-करते दोपहर को थक जाता, तो अपने सारे बीवी बच्चों को कुएं पर शहतूतों की घनी छाया में लेकर आ बैठता। उसकी पत्नियां अपने बच्चों के लिये और अपने लिये छोटी-छोटी खटोलियां उठा लाता। उस के चार लड़के पहली पत्नी से थे और दूसरी से तीन। उसे दिल में विश्वास था कि अगले सावन को वे एक-एक लड़का और जनेंगीं। एक दिन जब मैं उसकी पत्नियों की तरफ देख कर मुस्कराया, तो वह मेरे दिल की बात भांप कर कहने लगा—"चौधरी! इस लिये तो मैं एक और ब्याह करना चाहता हूं। इन सूखों को एक ही समय जनने की आदत पड़ गई है।" ठंडी-ठंडी छाया तले अपने परिवार संग बैठा माणूं मलियार इस बात पर प्रसन्न होता कि उसके सारे बेटे चिट्टे-गोरे और मज़बूत हैं। इस बात पर प्रसन्न होता कि वे धरती के सीने और हरियावल के झुरमुट में पल रहे हैं। उसे अनुभव होता कि वह समय आएगा, जब उसका हरेक लड़का एक-एक बाग का मालिक होगा, और माणूं मलियार की धूम चारों ओर फैल जाएगी।

हर सयाने माली के लिये कभी-कभी यह आवश्यक हो जाता है कि वह किसी एक चीज़ के निर्माण के लिये किसी दूसरी चीज़ को गिरा दे। बनाना और बिगाड़ना प्रकृति के नियम भी हैं। पहला काम तो माणूं मलियार हर समय खुशी से करता रहता, लेकिन दूसरा काम करते समय वह कलेजा मसोस कर रह जाया करता।

बेलों और बूटों को नर्म-नर्म 'टींडों' और 'तारियों' से

लदे हुए देख कर वह पहलू बचा जाता, उसे तोड़ने का साहस न होता। अगले दिन जब वे ज़रा ज्यादा पक जाते तो उस के ग्राहक उसकी चीज़ नाक-भौं चढ़ा कर खरीदते। शाम के समय जब उसकी कोई चंचल ग्राहिका माणू मलियार के साथ बातें करने के बहाने से शिकायत करती तो वह कहा करता—"क्या करूं भाभी ? इन मासूमों को तोड़ने का साहस नहीं होता।"

कुएं के पास लगा हुआ शहतूत बढ़ते-बढ़ते इतना बढ़ गया कि उसने सारे कुएं पर छप्पर डाल दिया। शहतूत के के फल गिर-गिर कर सारे पानी को गन्दा कर दिया करते। शाम को जो औरतें उसके कुए से पानी भरने को आतीं, वे कहा करतीं—"भाई माणू ! इसकी एकाध डाल काट कर हल्का कर दो ! क्यों लोगों को बीमार करने पर तुले बैठे हो ?" लेकिन वह किसी की न सुनता। सख्त मेहनत से दिया हुआ पानी पी-पी कर उसके शहतूत इतने बढ़े थे। बड़ी कठिनाइयों से वे इतने घनेरे हुए थे। उन्हीं के माणू सपने देखा करता था। इस तरह मेहनत से पाले हुए पौधों को काटने की हिम्मत कहां से लाता ? आखिर एक दिन जब वह बाहर परदेस गया हुआ था, तो उसकी पहली पत्नी ने आप ही उन पौधों को हल्का कर दिया। उसकी सब सहेलियां शिकायत करती थीं। जब माणू मलियार वापस आया, तो कुएं को मुण्ड-मुण्ड देख कर उसका दिल बैठ गया। पत्नी से तो कुछ न कहा, लेकिन न कुछ खाया न पिया। सारी रात इसी चिन्ता में काट दी। बार-बार उठ कर कुए की ओर

देखता और आहें भरता—

मक्की की ऋतु मे मागू मलियार के एक-एक पौधे मे तीन-तीन भुट्टे आए। मागू बहुत प्रसन्न था। दिन-रात रखवाली करता और किसी को अपनी फसल की ओर आंख उठा कर न देखने देता। एक दिन उसे ज्ञात हुआ कि उसके नन्हें बच्चे कच्चे-भुट्टे चोरी छिपे तोड़ कर हज़म कर जाते हैं। सबको इकट्ठा करके वह कहने लगा—"देखो शैतानो ! कभी मलियारों के बच्चों ने भी किसी चीज़ को खाया है ? पास खड़े होकर केवल बूटों को ताकते हैं।"

जनता दूर-दूर की जगहों से मागू मलियार का कुआं देखने आया करती थी। शाम को जाटों की औरतें पानी भरने के बहाने से मागू के बाग में आ जाया करतीं। मागू के गोरे-गोरे नन्हे-नन्हे बच्चों से घुल-मिल कर बातें करती और कभी-कभी अपनी साथिनों से नजरें बचा कर मागू के मजबूत जिस्म को भी सराहती हुए देखती। अपने चेहरे पर बार-बार पानी के छींटे मारतीं, दुपट्टों के किनारों से पोंछती हुई 'आई मागू आई मागू !' कहती चली जातीं। सात बेटों वाले मागू के कुएं से—

मागू की अब और उमंगें थीं, और भी कामनाएं थीं—

आज दो वर्ष बीते मागू ने बड़ी तलाश के बाद बहुत अच्छी किस्म की अंगूरी-बेल लगाई थी। सांप की तरह बल खाती हुई और फन की तरह फैलती हुई बेल ने सारे के सारे शीशम के वृक्ष को घेरे में ले लिया। गए साल भी

यह बहुत फैल गई थी। कुछ लोग कहते थे—इस में फल आएगा, कुछ कहते—नहीं, अभी तो बिल्कुल बच्चा है। मागूं मलियार बहुत देर तक प्रतीक्षा करता रहा। हल्का-हल्का सा बौर आया और झड़ गया, फल न लगा। इस वर्ष बहार की मौसम शुरू होने से पहले ही उसकी आंखें अंगूरी बेल की ओर लग रही थीं। मागूं उसके पास आकर खड़ा हो जाता और ताकता रहता कि किस तरफ बढ़ रही है, किधर का रुख करती है? अन्धाधुन्ध शाखाओं से चिमटती जा रही है। अगर कोई शाखा शीशम से हट कर लटकने लग जाती तो बड़े प्यार से पकड़ कर मागूं उसका मुंह मोड़ता और अगर कभी खिसक कर वह बाहर को फिसल पड़ती, तो प्यार से झुंझला कर उसे तने के साथ लगाते हुए कहता—"पगली किधर जा रही है? कहना ही नहीं मानती!"—जब भी उसे समय मिलता, वह अंगूरी बेल के पास आकर खड़ा हो जाता—

फिर एक दिन उसने देखा, बेलों में बौर आ रहा है। मागूं मलियार की बाछें खिल गईं।—"दर्दानी! आज खानकाह में दिया जला आना!" घर आकर उसने पहला काम यही किया। सारा परिवार समझ गया कि आज बाग में जरूर कोई नया फल आ रहा है—

बौर दानें बन गया। मागूं से अब इन्तज़ार न हो सकता था—"सुसरी धूप भी तो जल्द नहीं पड़ती, कहीं मेरा अंगूर फूले!" कभी-कभी वह दिल में कहा करता। अंगूर जब आया तो यों आया कि कोई हद न रही! शीशम

का सारा वृक्ष फल से लद गया और बोझ से दब कर झुकने लगा। अंगूर के दाने फूल-फूल कर मोटे होते गए और यों दीखने लगे, जैसे ज़मुर्द के गुच्छे लटक रहे हों। लेकिन अभी कच्चे थे। "क्यों नहीं पकते ये जल्दी-जल्दी ?" मागूं को उलझन होने लगी।

आखिर समय आ गया कि वह उन्हें तोड़-तोड़ कर टोकरियों में भर भर कर मण्डी में ले जाए, लेकिन अभी अंगूर पके न थे। "मागूं खान ! सब लोग मण्डी में कुछ कच्चे फल ले जाया करते हैं।" सब लोग उसे यही सलाह देते थे, लेकिन मागूं का दिल इतना कच्चा फल तोड़ना सहन न कर सकता था। वह देखना चाहता था—अंगूर के सब गुच्छों को रस से भर कर चमकता हुआ—उसे सब लोगों ने बहुत समझाया, लेकिन उसने किसी की एक न मानी।

एक ही धूप से सारा फल रङ्ग बदल गया और कुछ गुच्छे रिसने लग गए—सारा दिन मागूं मलियार कभी इस कोने से कभी दूसरे कोने से पीत-पके गुच्छों को तकता रहा। "शाम को चुन कर सवेरे मण्डी में ले जाऊंगा !" आखिर उसने फैसला किया।

लेकिन शाम को जब वह टोकरी लेकर कैंची हाथ में लिये बेलों के पास आया, तो उसे गुच्छे काटने की हिम्मत न पड़ी। बार-बार उनको तकता—अंगूरों के गुच्छे यों लटक रहे थे, जैसे झोलियां भरने गिरने के लिये व्याकुल हो रहे हैं।

मागूं बहुत देर तक उन्हें देखता रहा और इसी उधेड़ बुन में रहा। आखिर कैंची हाथ में लिये बढ़ा और ईश्वर का

नाम लेकर एक गुच्छे को काटने ही लगा था कि उसने फिर एक बार सारे के सारे फल पर नज़र दौड़ाई—उसके दिल में कोई विचार आया और घर लौट गया—

जब यह आध घण्टे के बाद वापिस कुएं पर आया, तो उसका सारा परिवार बीवी बच्चे उस के साथ थे। इतनी देर में चांद भी उभर आया था। कहीं-कहीं चांदनी बेलों में छन्-छन् कर अंगूरों के गदराए हुए गुच्छों पर पड़ रही थी। रस से भरे हुए दाने चांदनी में चमक रहे थे।

"इन मोतियों को,— इन जवाहिरों को जी भर कर देख लो।" अपने परिवार से उसने कहा—फिर उसने अपने छोटे बच्चे को ऊंचा उठाया, ताकि वह और समीप होकर देख सके। इसी तरह उनको कभी इस कोने से दिखाता और कभी उस कोने से। बहुत देर तक यूं ही करता रहा—

आखिर जब उसके सारे बीवी-बच्चे वापिस चले गए, तो उसने आकाश की ओर नज़र की, जैसे कोई बेबस हो। उसने आंखें बन्द कर लीं। मुंदी हुई आंखों से ही उसने एक गुच्छे को टटोला और काट लिया। काटता गया—काटता गया माणू मलियार! लेकिन कैंची की टक की आवाज़ के साथ उसके दिल में एक टीस उठती—एक दर्द सा निकलता!!

झूठ जैसा सच

यह होटल कनाट प्लेस में है—शायद देहली का सब से बड़ा होटल। वह और उसकी साथिन सुबह से परेशान हो रहे थे—"यहाँ कहां जगह मिलेगी?" एक ने झल्लाकर कहा—"पता लगाए लेते हैं!" दूसरे ने अनमनेपन से जवाब दिया। और दोनों ऊपर चढ़ गए।

एक नहीं, बल्कि दो कमरे यहाँ खाली थे। वे हैरान रह गए। उसकी साथिन ने उल्लास में हल्के से उसको चुटकी भरी। उसने मुड़ कर देखा--पीछे और गाहक खड़े थे। दो मर्द सांवले-सांवले से - दूसरा कमरा उन्होंने ले लिया।

जब बैरा उन्हें कमरे में लेजा रहा था, लड़की ने मुड़ कर अपने पीछे आते हुए गाहकों को देखा—"मौत की तरह पीछा कर रहे हैं!" लड़के ने कहा, वह कवि था।

"शायद दोनों प्रमेह के रोगी मालूम होते हैं!" लड़की ने अपना अनुमान लगाया। वह डाक्टरी का इम्तिहान दे रही थी।

और फिर वे अपने कमरे में और ये अपने कमरे में चले गए।—तेरह नम्बर और चौदह नम्बर—

कमरे में दाखिल होते-होते लड़के ने एक निगाह अपने पड़ोसियों पर डाली—"एक अन्धा है, दूसरा काणा—" उसके अन्दर छिपे हुए कवि ने अनुभव किया—

"एक को ज़रा ज़्यादा बुखार है दूसरे को ज़रा कम —बीमार दोनों है—" लड़की के अन्दर छिपी हुई औरत ने अनुमान लगाया—

और फिर अपने-अपने कमरों में, गलीचों पर, गद्दियों पर, सोफों पर—वे इन्हें भूल गए और ये उन्हें.....

"आप स्नान कर लें पहले—फिर खाने का समय हो जायगा।" और फिर लड़की सूटकेस खोलकर चीजें बाहर निकाल निकाल कर रखने लगी। इसी तरह—जब तक लड़का नहाता रहा, लड़की कुछ न-कुछ करती रही। फिर उसने एक किताब उठा ली—"भाइयो बहनों!"—ये गांधी जी के वे भाषण थे, जो उन्होंने प्रार्थना सभा में दिये थे। लड़की को गांधी जी पर असीम श्रद्धा थी—"मुसलमान मेरा भाई है"—उसके कानों में गांधी जी के शब्द गूंजते। वे कितने प्यार से, कितनी चाह से, कितनी सरलता से कहते थे—"उम्मत अलरसूल" और सुशीला नय्यर दो बहनें थीं और मोहनदास कर्मचन्द गांधी उनके पिता थे! कनाट प्लेस

में जब आग लग रही थी, दुकानें लुट रही थीं; छुरे चल रहे थे, गोलियां तड़तड़ा रही थीं, होस्टल के सभी मुस्लिम नौकर भाग गए थे। हिन्दू सिख लड़कियां, टोलियां बना-बना कर खुसर-फुसर किया करतीं और उनकी ओर देखकर मुस्करा छोड़तीं। शाम को जब रेडियो पर प्रार्थना-सभा का रिकार्ड बजता—कमरे में बैठे-बैठे कभी-कभी उसे यों अनुभव होता, जैसे अभी-अभी बापू उसे गोदी में ले लेंगे—

सूटकेस में गांधी जी पर एक और किताब पड़ी थी, एक और—एक और—उर्दू में, हिन्दी में, अङ्गरेज़ी में!—

यों किताबों को उलटते-पलटते लड़की अचानक चौंक पड़ी। 'खड़ाक' के साथ, साथ वाले कमरे से एक आवाज़ आई, जैसे कोई चीज़ नीचे गिर पड़ी हो। तेरह नम्बर के कमरे में कम बुखार वाला लेटा हुआ था, ज्यादा बुखार वाला बेचैन था। इतना बड़ा काम अभी सामने पड़ा था और बुखार था कि थमने ही में न आता था। और उसे हर चीज़ पीली-पीली सी नज़र आ रही थी उसने धोबी की धुली हुई सफेद दुधिया धोती निकाली और पलंग पर पड़े हुए अपने साथी से पूछा—"क्या रंग होगा इसका?"

"पीला"—उसने जवाब दिया।

"इन सबों को सफेद कर देंगे"—फिर जस दोनों गा उठे! कम बुखार वाला नर्म से लहजे में और ज्यादा बुखार वाला अकड़ कर, ऐंठ कर।

"यह 'साथी कमरे' में यरकान के रोगी न जाने क्या खटपट कर रहे हैं?" लड़की ने लड़के से कहा, जो नहाकर

बाहर निकल रहा था। "कभी ट्रंक खुलते हैं, कभी बन्द होते हैं, कभी कुछ गिरता है, कभी कुछ गिरता है।"—

"दिमाग़ ख़राब होगा"—लड़के ने कपड़े पहनते-पहनते कहा—

खाने वाले कमरे में भी तेरह नम्बर की मेज़ चौदह नम्बर के समीप थी। नियमानुसार बाद में आए चौदह नम्बर कमरे वाले जोड़े ने अपने पड़ोसियों की ओर मुस्करा कर देखा और बैठ गए। एक ने सफेद दुधिया धोती पहन रखी थी और दूसरा खाकी निक्कर—कमीज़ पहने था। उनमें से एक गहरा सांवला था, दूसरा ज़रा कम। दोनों चपर-चपर खा रहे थे। रोशनदान के शीशे को चीरती हुई एक चमकीली किरण खाकी कमीज़ वाले आदमी पर पड़ रही थी। मटियाला-सा यह मरहटा यों दीखता था। जैसे नदी-किनारे का मेंढक। नौजवान लड़का और लड़की बातें कर रहे थे—

"आज दोपहर को..." उन्होंने सोचा—"बाहर नहीं जाएंगे—"उन्हें ऐसा महत्वपूर्ण निश्चय करना था।

"और बिरला-मन्दिर ?" लड़की ने सांझ के प्रोग्राम की बाबत पूछा।

"आज नहीं, कल चलेंगे।" लड़के ने रुकते-रुकते कह दिया। लड़के का इन्तज़ार करते-करते लड़की कई हफ्तों से बापू की प्रार्थना सभा में नहीं गई थी।

"बस, तब गई थी, जब बापू ने व्रत खोला था। हां, भला आज क्या तारीख है ?" लड़की ने लड़के से पूछा और

लड़का अभी बताने ही लगा था कि बगल की मेज़ से आवाज़ आई—

"और आज तीस तारीख है। जनवरी की तीस तारीख, उन्नीस सौ अड़तालीस—तीस जनवरी उन्नीस सौ अड़तालीस !!" नौजवान लड़का-लड़की हैरान हो रहे थे। ऐसे सभ्य होटलों में इस तरह के गुण्डे आकर ठहरते हैं। लड़की ने लड़के की ओर देखा—उसकी दृष्टियां जैसे कह रही थीं— "मुझे तो कोई डाकू मालूम होते है !" और जल्दी-जल्दी खाना खत्म करके वे अपने कमरे में आ गए।

कमरे में आकर वे अखबार देखने लगे। अगर अखबार न देखते, तो दोनों बैठ कर सोचते—अपनी मुश्किल का हल ढूंढ़ते। और उनकी मुश्किल भी तो आसान मुश्किल नहीं थी ?—"आजकल सुहरावर्दी भी आए हुए हैं !" लड़के ने अखबार पढ़ते-पढ़ते ऊंची आवाज़ में कहा।

"हाँ हां, कई दिनों से वे प्रार्थना सभा में बापू के साथ ही बैठते हैं।" लड़की को रोज़ की डायरी का ज्ञान रहता था।

"काश! महात्मा जी कुछ समय पहले पैदा हुए होते।"

"हां ! तब तो आज तक हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा मिट चुका होता !"

"और फिर···और फिर···?" जैसे दोनों एक साथ बोल उठे—एक नौजवान मुसलमान लड़की, एक नौजवान सिक्ख लड़का।

वे एक दूसरे को कितना चाहते थे ? जैसे सृष्टि के आरम्भ से—लड़की कहती— "तू मेरे सपनों में बसा करता था। इस से बहुत पहले कि मैंने तुझे देखा, मैं तेरे बारे में सुना करती, तो मेरे दिल को कुछ-कुछ होने लगता। और फिर मैंने तुझे देखा—जैसे नदी सागर के पास आती है। मेरा जी चाहा कि एक लहर बन कर तुझ में खो जाऊं।"

लड़का अनुभव करता— उस पार—पाकिस्तान में उसका सर्वस्व लुट चुका था ! उसके सपनों की मौत, उसके प्यार की मौत—उन रिश्तों की मौत, जिन्हें उसने अपनी जवानी के लहू से पाला-पोसा था। वे भाई, भाई नहीं रहे जो एक दूसरे के लिए तरसा करते थे। वे मित्र, मित्र नहीं रहे थे, जो उससे अलग नहीं हो सकते थे। वे कोमल कलियां, जिन्हें उसने आंसुओं से सींचा था, उसे पहचानने में नास्तिक थीं।

और लड़की कहती—"मैं तुम्हें सब कुछ फिर से ला दूंगी।" और लड़के के अन्दर छिपे हुए कवि को यों लगता, जैसे वह ग़लत नहीं कह रही।

खोए-खोए से, चुप-चुप से वे एक दूसरे की ओर देख रहे थे। सुस्त-सुस्त, खाली-खाली दृष्टियों से। यह चीज़ कितनी आसान है, मगर कितनी मुश्किल ?

यह चीज़ कितनी आसान है मगर कितनी मुश्किल ? बिलकुल वह यही सोच रहा था। साथ वाले कमरे में लेटा हुआ वह आदमी, जिसका बुखार और ज्यादा तेज़ हो गया था। कम बुखार वाले का बुखार अब भी कम था। वह

शीशे के सामने खड़ा आंखों में काजल लगा रहा था—

"काश कि मैं औरत होता।" वह सोचता—"मैं औरत होता!"

ज्यादा बुखार वाले का बुखार और बढ़ रहा था—"कितना आसान था?" उसने कम बुखार वाले से कहा कि वह दोनों 'चीज़ें' उसे पकड़ा दे। एक तो एक, वह तो उनसे चौदह सितारों को भी तोड़ सकता था; आसमान को गिरा सकता था और फिर यह धरती उसकी हो जाएगी। फिर नया चांद उभरेगा, फिर नदियां पुकारेंगी, फिर हवाएं लहरेंगी।

यह पीला रङ्ग! कोई चीज़ लाल नहीं रहेगी, कोई चीज़ काली नहीं रहेगी। पीले रङ्ग से उसे नफरत थी। चारों ओर पीला रङ्ग चढ़ा था। "यह...उसने कमरे की दीवार की तरफ देखा—दीवार पीली थी। उसका जी चाहा—अपने हाथ में उस 'चीज़' को घुमा कर अपनी छाती पर रक्खें और घोड़ा दबा दें। खुद-ब-खुद चीज़ें लाल हो जाएंगी और फिर उस 'चीज़' की नाली जैसे मुड़नी शुरू हो गई।

कम बुखार वाले ने ज्यादा बुखार वाले को झिंझोड़ दिया। "यूं इस चीज़ को नीचे नहीं गिराना चाहिये!"

चौदह नम्बर में वे फिर चौंक पड़े, जवान लड़का और जवान लड़की। तेरह नम्बर वाले किस तरह के आदमी थे? फिर "खड़ाकू"—! हालांकि उन्हें इतनी कठिन समस्या का हल सोचना था। काश! कि वे आज शाम तक ही सही, यह खटर-खटर बन्द कर दें, काश!—

एक पढ़ी लिखी मुसलमान लड़की, एक पढ़ा-लिखा सिक्ख लड़का। क्या अधिकार था उन्हें कि वे एक-दूसरे को चाहें ? गुरु नानक का समय और था, जब उनके एक पहलू में बाला बैठता था और दूसरे पहलू में मर्दाना। आज सिक्ख मुसलमानों से बहुत दूर चले गए थे। क्या हुआ जो दोनों ईश्वर की एकता पर विश्वास रखते थे ? किस बुरी तरह से सिक्खों ने मुसलमानों को कत्ल किया था, सिर्फ इसलिए कि वे मुसलमान थे। और फिर मुसलमानों ने किस तरह सिक्खों को केशों से पकड़-पकड़ कर घसीट-घसीट कर मारा था। किस तरह सिक्खों की आबादियों पर आबादियाँ देहातों के देहात तबाह किये गए ? किस तरह मुसलमानों के मुहल्ले के मुहल्ले, गांव के गांव बर्बाद किये थे। और ये घाव अभी ताजे थे। अभी उन तलवारों पर से लहू नहीं उतरा था, जो खून में नहाती रही थीं। अभी तो उन छुरों को साफ नहीं किया गया था, जो पड़ोसियों के सीनों में खुभते रहे। और एक सिक्ख नौजवान, जिसकी कौम ने बर्बरों को जन्मा था, जिन्होंने मानवता को लज्जा दिया था और एक मुसलमान लड़की, जिसके दीन के भाइयों ने हिंस्र पशुओं को भी मात कर दिया था ? जिस तरह वे सोच रहे थे, जैसे इस तरह वे सोच सकते थे ? नहीं, नहीं, नहीं !— घड़ी तीन बजा रही थी और लड़का अपनी आंखों में आंसू भरे लड़की की ओर देख रहा था और अपनी आंखों में आंसू भरे लड़की लड़के की ओर देख रही थी।

एक मिनिट बाद, साथ वाले कमरे से घड़ी की आवाज़

आई। —"आज—आज—आज !" उस घड़ी ने अपने तीन बजाए। "आज—या फिर कभी नहीं !" यह काम कोई दिल वाला ही कर सकता था और—सामने कम बुखार वाला खड़ा था, जिसका बुखार बढ़ने ही में न आता था। चित्रों को तकता रहा, पुस्तकें पढ़ता रहा, पलंग पर आकर अपने साथी के समीप बैठ रहा। लेकिन फिर भी वही का वही का वही रहा। "बुजदिल !" ज्यादा बुखार वाले ने दिल ही दिल में घृणा के साथ कहा और फिर ज्यादा बुखार वाला सोचता—"अगर यह चित्र उसके ऊपर आ गिरे !" —यह हवा लगातार क्यों उनके दरवाजे को खटखटा रही थी। अन्दर गुसलखाने में नल्के का पानी टप् टप् करके गिर रहा था, क्या उस आवाज़ को कोई बन्द नहीं करता ? आज आंधी न आ जाए, बादल न कड़कने लगें—ये मोटरें कभी-कभी फेल हो जाती हैं, लेकिन और मिल सकती हैं। कोई चाहे तो दुनिया भर को खरीद ले, कोई चाहे तो दुनिया भर को तोड़-तोड़ कर मसल-मरोड़ कर रखदे ! एटम बम घर-घर होना चाहिए, एक-एक आदमी के अधिकार में —"

"तेरा बुखार तेरे सिर को चढ़ा आ रहा है।" कम बुखार वाले ने ज्यादा बुखार वाले को नज़रों ही नज़रों में कहा—और ज्यादा बुखार वाले ने गुस्से में आकर नज़दीक से एक चीज़ उठाई और कम बुखार वाले पर दे मारी।

"खड़ाक" फिर आवाज़ आई। आंखों में आँसू भरे लड़की चौंक उठी—ये लोग कभी फैसला न होने देंगे। कुत्ता पड़ोस किसी का न हो। लड़की का इम्तिहान खतम

हो रहा था।—"आज! वरना फिर कभी नहीं!"—यह निश्चय जरूर करना था और फिर लड़का कल वापिस जा रहा था। अगर आज फैसला न हुआ, तो फिर इम्तिहान के बाद वह कहां जाएगी? दूर—बहुत दूर—जहां से फिर वापिस नहीं आया जाता। अपरिचित देश—! उस देश के लोग कितने अक्खड़ सुने जाते थे और यह देवता जो ईश्वर ने भेजा था—ईश्वर के पास लौट जाएगा। यह देश, जहां वह पैदा हुई, पली और बढ़ी, अब अपरिचित हो रहा था। अपने देश को कोई किस तरह छोड़ सकता है? अपने देश के लिए तो कोई जान भी कुर्बान की जा सकती है।

लड़के ने लड़की को बताया। वह पौदा, जो उन्होंने पांच साल पहले अपनी प्यार की निशानी के रूप में लगाया था, आज फलों के बोझ से झुक आया था। और लड़की को याद आया कि आज से पांच साल पहले उसने उसे पहली बार देखा था—एक कमरे में, वह मेज़ पर बैठा था। जैसे वह एक सपना हो—और वह डर रही थी। कहीं वह उसके साथ कोई बात न कर बैठे, उससे अपने दिल का भेद छिपाया नहीं जायगा।—और वह एक फूल की तरह चुप बैठा रहा—चुप बैठा रहा!

"करना तो जरूर है ..." फिर जैसे एक ही साथ दोनों बोल उठे। एक नौजवान सिक्ख लड़का, एक नौजवान मुसलमान लड़की—"लेकिन किस तरह करना है?" इस बात का फैसला वह करके आया था। तेरह नम्बर में वह आदमी जिसका बुखार बराबर बढ़ता जा रहा था—"किस

तरह करना है ?" यह तो कम बुखार वाला भी जानता था। ज्यादा बुखार वाले के सामने तस्वीर सी उभर रही थी। एक धर्म, एक कौम, एक देश—और वह रह-रहकर मुस्कराता। कभी-कभी ऊंची-ऊंची आवाज में हंस देता, फिर उसने कम बुखार वाले को अपने पलंग के पास बुलाया, जैसे कोई सोया-सोया सा हो। उसकी आंखें किसी चीज़ को को ताक रही थीं। उसने एक कहानी कहनी शुरू की—

एक था राजा। एक दिन उसने कहा— आज मैं न्याय करूंगा। निदान अदालत लगी। पहला मुकदमा पेश हुआ, यह एक बच्चे का मुकदमा था। जिसकी दो माताएं दावेदार थीं। एक कहतीं—यह मेरा बच्चा है, दूसरी कहती —मेरा बच्चा है। राजा हैरान था, आखरकार उसने कहा- हम इस बच्चे को बांट देंगे। उसने अपनी तलवार सौंत ली, ताकि बच्चे के दो टुकड़े कर दे। असली मां तड़प उठी— 'बेशक सारा बच्चा इसे दे दो। यह बच्चा इसी का है, मेरा नहीं।" और नकली मां ने कहा--"नहीं मैं तो आधा ही लूंगी।" और न्याय प्रिय राजा की तलवार उठी और बच्चे के दो टुकड़े हो गए।

और ज्यादा बुखार वाला ज़ोर जोर से हंसने लगा -

कितने ज़ोर से हंस रहा था वह ?—"क्या इन तरह नम्बर वालों को मानवता के नियमों का भी ज्ञान नहीं?"- लड़की ने झुंझलाकर लड़के की ओर देखा—

"दुनिया वहशियों से भरी पड़ी है। यह तो सिर्फ हंस रहे हैं, वरना इस तरह का इन्सान तो इससे भी ज्यादा

भयानक बातें कर सकता है।" लड़के की दृष्टियों ने उत्तर दिया—

"लेकिन इसकी हंसी तो यूं लगती है, जैसे कोई गोली चलती हो, जैसे बम फटते हों!" लड़की की आंखों ने शिकायत की—

"तू सच्ची है। तू औरत है, औरत को अनुभव-शक्ति ज्यादा तीखी होती है—" लड़के ने बिना बोले आंखों ही आंखों में कहा—

और लड़की का दिल धड़कने लग गया, जिस तरह एक बार पहले भी धड़का था। उस समय जब कि सारे कनाट पलेस में आग लग रही थी, लूट-खसोट मच रही थी, गोली चल रही थी—और फिर खबर आई कि फिसादी उसके कालेज पर भी हमला कर देंगे। वह सोचती—क्या ये हिन्दू इन तमाम मुसलमानों को मार डालेंगे?—और फिर उसे ख्याल आया कि बगली कमरे वाले भी हिन्दू ही होंगे। जभी तो उस के दिल में छिपी हुई मुसलमान लड़की कांप-काप जाती थी! फिर उसे अपने आप से शर्म आने लगी। जब तक गांधी जीवित है, जब तक हिन्दुस्तानी बेड़े का मल्लाह मौजूद है,—कल ही तो वे उसकी प्रार्थना-सभा में जाएंगे? उसके साथ उसका सिक्ख-साथी होगा जिसने आज तक बापू के दर्शन नहीं किये थे। और वह सोचती—"मैं बापू से कहूँगी—बापू! आप हमारी मुश्किल का हल बता दें—और वे मुस्करा पड़ेंगे, हंस उठेंगे! जैसे उनका मिशन पूरा हो रहा हो!"

"आज मेरा मिशन पूरा होके रहेगा।" ज्यादा बुखार वाला बोले भी जा रहा था और कपड़े भी पहने जा रहा था। खाकी निकर, खाकी कमीज़, बादामी बूट—"मुझे हमेशा यों अनुभव होता रहा, जैसे मैं कुछ करने के लिए पैदा हुआ हूँ।—" और वह सोचता—किस तरह एक बार ताज-महल देखकर उसका जी चाहा था कि उसके टुकड़े-टुकड़े कर दे। और वह संगमर्मर की शिलाओं पर जैसे बेहोश होकर गिर पड़ा था। कोई कहता—उसे 'मिरगी' हो गई है, कोई कहता इसे मूर्छा आ गई है। और फिर किस तरह एक दिन चौदहवीं रात के चांद की चांदनी में, मोतिये से लदी हुई भरपूर जवान अपनी पत्नी को देख कर उस के मुंह से झाग निकल आई थी। और कमेटी बाग़ की सीढ़ियों पर उसने उसे ज़ोर से धक्का दे दिया था। मथुरा के सब से बड़े मन्दिर में कृष्ण की सबसे बड़ी मूर्त्ति को देख कर उसके बाजुओं में ऐंठने शुरू हो जाती। और न जाने क्या-क्या कुछ उसके दिल में आता रहता। लेकिन उपासक थे कि समाप्त होने ही में नहीं आते थे।

"आज—आज—आज—आज !" घड़ी ने चार बजाए। वह बिलकुल तैयार था। नीचे मोटर के हार्न की आवाज़ आई, वह बिलकुल तैयार था। उसने कम बुखार वाले की ओर देखा—वह फिर शीशे के सामने खड़ा आँखों में काजल लगा रहा था—

"बुज़दिल !" ज्यादा बुखार वाले ने दिल ही दिल में घृणा के साथ कहा और रेडियो के बटन को घुमा कर बाहर

निकल गया। कम बुखार वाले ने अपने साथी को बाहर जाते हुए देखा—। और फिर रेडियो की तरफ देखा, जो गरम हो रहा था। उसके हाथों से अचानक काजल की शीशी गिर कर टूट गई।

फिर आवाज़ आई, लेकिन अब कमरे में लड़का और लड़की चाय पी रहे थे। उन्होंने निश्चय किया कि अपने विषय में वे रात को सोचेंगे, जब तेरह नम्बर में से आँच का आना बन्द हो जाएगा। दिन भर जैसे बीच वाली दीवार में से फूट-फूट कर लपटें निकल रहीं थीं और उन्हें अपनी लपेट में लिये जा रही थीं। उसके कमरे की तरफ से आती हुई हवायें अनुभव होतीं, जैसे मैली-मैली, भीगी-भीगी, कसैली-कसैली--

और फिर हंसते-खेलते वे दोनों लड़का लड़की तेरह नम्बर को भूल गए। रात को उन्होंने निश्चय करना था तो शाम क्यों चिन्ता फिकर में गंवाई जाए ? लेकिन फिर भी लड़की सोचती—कितना मुश्किल था यह निश्चय करना। कौन जाने उनकी भी यह आखिरी रात ही हो—यूं इकट्ठे ? और लड़का हंसता-हंसता बातें करता-करता खो सा जाता। —मैं अन्याय तो नहीं कर रहा ? मैं अपने आप को धोखा तो नहीं दे रहा ? कहीं उस लड़की की माँ ने किसी के साथ प्रण ही न कर रक्खा हो ? उस लड़की का भाई कहीं ज़बान न दे चुका हो ?"

आखिर यह इस कदर आसान बात तो थी नहीं ? इतना आसान फैसला तो था नहीं ? लड़की मान्य-मुसलमान

घराने से सम्बन्ध रखती थी। लड़का मशहूर सिक्ख खानदान का दीपक था। उसके मां-बाप कैसे मानेंगे? मुश्किल—मुश्किल--मुश्किल !!! अब जबकि पाकिस्तान बन चुका था, जब अपने नए देश को हर मुसलमान की ज़रूरत थी। जब मुसलमान लड़कों के लिये लड़कियों की कमी थी। जब पाकिस्तान सरकार को डाक्टरों की बड़ी ज़रूरत थी और लड़के की अपनी बिरादरी में कई सुन्दर पढ़ी-लिखी और सुशील लड़कियाँ उसकी ओर नज़रें लगाए बैठी थीं। और अब जब कि उसने शादी करने का निश्चय भी कर लिया था; तो पहला हक़ उन बिरादरी की लड़कियों का था, जिन्होंने उसके पिता के दरवाजे की चौखट घिसा दी थी। मुश्किल—बहुत मुश्किल—! और कभी-कभी दोनों को यों अनुभव होता जैसे यह असम्भव था। और ये दोनों बेकार अपने आप को धोखा दे रहे थे।

घड़ी ने छः बजाए। लड़की ने सोचा—अपने होस्टल जाकर पता दे आए और इसके अलावा न जाने क्यों पिछले कुछ पलों से वह कमरा उन्हें जैसे काट खाने को दौड़ता हुआ अनुभव होने लगा था। दोनों के दिलों में जैसे तड़प सी होने लगी थी। वे बाहर आ गए—

होटल से उतर कर कनाट प्लेस में उन्होंने देखा कि दुकानें बन्द हो रही थीं, उन्होंने कोई विशेष ध्यान न दिया सड़कों पर मोटरें तेज़ जा रहीं थीं, उन्होंने फिर भी कोई ख्याल न किया। लोग भयभीत से तितर बितर हो रहे थे, लेकिन ये दोनों अपने ध्यान में मग्न होस्टल की ओर चले

गए, जो सड़क के उस पार था। और ज्यों ही लड़की ने गेट पार किया, तो एक चौकीदार भगता-भगता आया और उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया—

लड़का सामने के मैदान में टहलता रहा। थोड़ा थोड़ा धुंधलका हो चला था। पन्द्रह-बीस मिनट के बाद वह फिर गेट पर आया। लड़की ने कहा था—वह उतनी ही देर लगाएगी; ज्यादह नहीं। जंगल के साथ लगी हुई, वह उसका इन्तज़ार कर रही थी।

"चलो!" लड़के ने साधारण से अन्दाज़ में कहा—लड़की चुप थी—

"क्यों? यह गेट आज इतनी जल्दी क्यों बन्द हो गया?" लड़के ने फिर प्रश्न किया—

लड़की फिर भी चुप थी—

"तुम बोलती क्यों नहीं? आखिर तुम्हें क्या हो गया है?"

"बापू को···किसी ने···मार दिया है, गोली से—"

लड़का जैसे पत्थर की शिला बन कर रह गया—

"किसी ने तीन गोलियाँ चला कर उन्हें ढेर कर दिया है!"

लड़का निश्चल खड़ा रहा—

"मैं नहीं आ सकूंगी। आज यहाँ से कोई बाहर नहीं निकल सकता।—लेकिन वह निश्चय?—वह निश्चय मैंने कर लिया है—"

लड़का फिर भी चुप था—

"तुम्हें अब 'हाँ' करनी ही होगी ! बापू कभी नहीं मर सकते, हम उन्हें ज़िन्दा रक्खेंगे !"

लड़का वैसे ही चुप था—

"इस जंगले में से तुम्हारा हाथ अन्दर आ सकता है अब मुझ से और इन्तज़ार नहीं होगा !"

और लड़के ने अपना ठंडा-बर्फीला हाथ अन्दर बढ़ा दिया।

"हम शादी करेंगे, एक सिक्ख और एक मुसलमान —उन्होंने नज़रों ही नज़रों में एक दूसरे से प्रण किया। और बेसुध, पथराए से वे वहीं खड़े रहे—खड़े रहे। अंधेरा बढ़ गया और बढ़ गया—

देहली की सड़कें यों सुनसान पड़ी थीं, जैसे यहाँ कोई बसता ही नहीं था। एक अकेला, कदम गिन-गिन कर रखता हुआ लड़का होटल की सीढ़ियों पर चढ़ा एक सिक्ख लड़का जो मुसलमान लड़की का हो गया था। और उसे पता लगा कि एक हिन्दू ने एशिया के एक महान हिन्दू का खून कर दिया था—और वह हिन्दू दिन-भर तेरह नम्बर के कमरे में उनके पड़ौस में रहा था।

"मैं भी कहूँ कि उस दीवार में से दिन भर आंच सी क्यों आती रही थी ?—" लड़का सोचने लग गया—

गुरु की नगरी में

सुबह से मैं अमृतसर की गलियों के चक्कर काट रहा था। तंग गलियां, जिन्हें लोगों ने जला-जला कर विशाल कर दिया था। कीचड़, कीचड़ ही कीचड़! कुछ बारिश के कारण, कुछ मलबे की वजह से, जिसे अभी तक उठाया नहीं गया था।

घूमता-घामता मैं एक चौक में जा निकला। चारों ओर गिरी हुई दीवारें—मुझे यूं जान पड़ता, जैसे मैं तक्षशिला के खंडहरों में खड़ा हूं।—जहां खड़े होकर मैंने एक बार कहा था—"यहां भला देखने वाली चीज़ कौन सी हुई?" पत्थरों पर पड़े हुए पत्थर, एक दूसरे पर औंधे गिरे हुए, इन के अतिरिक्त बस और कुछ नज़र न आता था।

"ज़रा सुनना ! कटड़ा जैमल सिंह क्या यही है ?" पास से गुज़रते हुए मैंने एक अमृतसरिये से पूछा--

"हां !" वह दस कदम आगे जा चुका था—

"भाई ! रामगली कौन सी है ?" मैंने गुज़रते हुए एक और अमृतसरिये से प्रश्न किया—

"यहीं-कहीं ढूंड लो—" जैसे कोई सूई खो गई थी। —वह अपने ध्यान में मग्न.....मेरा जवाब देते हुए गुज़र गया—

मैंने सोचा—इस मलबे के नीचे रंगीन शिलाओं के फ़र्श होंगे। संगे मर्मर के दालान होंगे, हाथी-दांत की खिड़कियाँ होंगीं—झरोखे होंगे; इस मलबे तले नीवें होंगीं, जिन्हें रखते समय सलाम पढ़े गए होंगे मुहूर्त्त निकलवाए गए होंगे; मिन्नतें मानी गई होंगीं—चढ़ावे चढ़ाए गए होंगे—

मलबे के पीछे मलबा—उसके पीछे और मलबा। जहां तक नज़र काम करती, गिरी पड़ी दीवारें थीं। मैंने सोचा—जल-जल कर भुन-भुन कर...यह भवन थक न गए होंगे ? इनसे निकलता हुआ ताव, इनके शोलों की लपेट कहाँ तक पहुंची होगी ? ये शिलाएं गिरते गिरते नङ्ग आ गई गोंहीं।—कहीं २ दीवारें जूं की त्यूं खड़ी थीं—

"वहां—उस गली में—उस छज्जे पर से हम बम फैंकते थे। हमारे पास बमों से भरे हुए थैले थे, कितने ही थैले !"—एक हिन्दू नौजवान अपनी भुजाएं फैला २ कर एक सफेद दाढ़ी वाले सरदार के सामने खड़ा हुआ कह रहा था—"यह कटड़ा हमने देखते ही देखते जला कर खाक कर

दिया था। हमारे पास हर किसम और हर बनावट के बम थे, बारूद के बम और ज्वालामुखी बम—और भी कई किसम के। बम बनाने वाले और थे, उन्हें चलाने वाले और।" वह बोलता गया—बोलता गया—

"एक बार तो हमने आग की आंच और उन शोलों की लपेट लाहौर तक पहुंचा कर छोड़ी। मैं कहता हूं—लाहौर में भी हम प्रलय मचा देते, अगर माल्रोड के रहने वाले लाले और बाबू हमारी सहायता करते; हम वहां भी तबाही ले आते—"वह युवक अभी तक बोल रहा था—

"यहां मुसलमान-पुलिस के हटने की देर थी, हमने छत्तीस घण्टों के अन्दर २ शरीफपुरे की ईंट से ईंट बजा दी। अब तो बोने के लिये भी कहीं मुसलमान—बीज नहीं मिलता।* ये शरीफपुरे के बासी अपने घरों की दीवारों में सेंध लगा कर पिछली तरफ से भाग गए।

मुझे याद आया—एक बार मैंने अखबार में पढ़ा था कि शरीफपुरे के कुछ व्यक्तियोंने श्मशानसे आती हुई हिन्दुओं की एक टोली पर पेट्रोल छिड़क कर उसे ज़िन्दा जला दिया था। दीवारों से पटक पटक कर और न जाने किस तरह उनका प्राणान्त किया था!—

अगस्त से पहिले जब चारों ओर संघर्ष सा चल रहा था। प्रतिपल प्रत्येक घड़ी जलती पर तेल का काम किया जाता था। मेरे एक मुसलमान दोस्त ने लाहौर में मुझे बताया

---

*एक पंजाबी मुहावरा—

था कि शरीफपुरे के हर घर में एक भट्टी लगी हुई थी। यहां सारे पंजाब के लिये नेज़े और भाले बनते थे। शरीफपुरे के मुसलमान बड़े दलेर थे, बड़े निडर थे। दिन-दहाड़े चलती हुई तलवारों में से गुज़रते हुए आग लगाते और लूट-मार करते थे। हिन्दुओं और सिक्खों को बुरी तरह कतल करते थे। यह हिंसा-प्रियता न पहले कभी सुनी थी न देखी थी—

"हमने उन्हें गाजर मूली की तरह काट कर रख दिया....."नौजवान हिन्दू अभी तक खिचड़ी २ दाढ़ी वाले सरदार को जोशीली भंगिमा में अपने कारनामे सुना रहा था—"हमने चुन २ के मोटे २ मुर्गे मारे। जब हमारे हाथ राइफिलें लगीं, हमने उन्हें दानों की तरह भून दिया। फिर हमने गाड़ियों पर हल्ला बोल दिया; खून की नदियां वह निकलीं—"

"हमने क्या कुछ नहीं फूंका? टांगे फूंके, लारियां फूंकीं, मोटरें फूंकीं—" हिन्दू-युवक अभी तक बोल रहा था—"गाए-भैंसों के खेड़े के खेड़े गलियों और मुहल्लों में आवारा फिरते रहते। उनको बात पूछने वाला कोई नहीं था। जिस किसी के घर में चारा होता, वही उन्हें अपने घर बांध लेता। दो २ रुपयों में साइकिलें बिकीं, कपड़ा सीने की मशीनें सवा रुपए में,—बिजली के पंखे चार २ आने में—"

सफेद दाढ़ी वाला सरदार चुपके से सब कुछ सुने जा रहा था। हिन्दू-युवक बोलता जा रहा था, बोलता जा रहा था—"मैंने एक मुहल्ले में देखा कि एक अमृतसरिये से

कालीन नहीं उठाया जा रहा था। उसने कालीन को लपेट तो लिया था लेकिन वह उसे उठा नहीं सकता था। कुछ देर तक वह उसके साथ शक्ति-प्रदर्शन करता रहा, फिर थक गया। उसने अपनी तलवार निकाली और उस कालीन का फालतू हिस्सा काट कर अलग फैंक दिया। बाकी कालीन कन्धे पर डाल कर चलता बना—"

मैंने आगे बढ़ कर देखा—सफेद और दूधिया दाढ़ी वाले सरदार के चांदी ऐसे बालों में आंसुओं के मोती झिलमिला रहे थे। जैसे वह कह रहा हो—"बिल्कुल यूं ही हमारे साथ भी हुआ। हमारी पैतृक-सम्पत्ति, गगनचुम्बी अट्टालिकाएं, बड़े चाव से सजाई हुई कोठियां, हमारे विशाल भवन, हमारे कारखाने—फैक्टरियां, मशीनें, भट्टे, उपवन और आबादियाँ....."

"हमारे तीर्थ और जन्म-स्थान, हमारे गुरुद्वारे, मन्दिर और शवालय, समाधियां, हमारी माताएं और बहिन-बेटियां अछूती कंवारियां, हमारे स्वस्थ युवक; मुंह तक भरी हुई दुकानें, भरपूर गोदाम, तितलियों की तरह उड़ती हुई मोटरें, हमारे ट्रस्ट, हमारे फण्ड, हमारे क्लब और सोसाइटियाँ; हमारे उधर की हवा उधर का पानी, उधर की धूप और उधर की छांव—"

"बाज़ार माई-सेवाँ कहाँ है?—"मैंने और आगे जाके पूछा—हिन्दू-युवक अभी तक भुजाएं फैलाए हुए बातें कर रहा था—

"न जाने मैंने यह क्यों अनुभव किया कि अगर मैं तनिक और आगे बढ़ा, तो दुधिया दाढ़ी वाले सरदार और युवक हिन्दू-लड़का छलावे की तरह गायब हो जाएंगे। मैं चुपके से वहाँ से खिसक आया—

अमृतसर जल चुका था। जो हिस्सा अभी तक गिरा नहीं था—सहमा-सिसका हैरान खड़ा था जैसे उसकी मौन कह रहा हो—मुझे स्वयं भी ज्ञान नहीं कि मैं कैसे बच रहा ?

"मैं भी अपनी अन्तर्ज्वाला से जल उठूंगी, राख हो जाऊंगी।" खंडहरों में घिरी हुई कोई ऊंची मंज़िल जैसे कह रही हो—इस मंज़िल के सामने एक दुकान पर लोगों की भीड़ इकट्ठी हो रही थी। हाथ मलते हुए, घबराए हुए सहमे और कांपते हुए अमृतसरिये दौड़ते आ रहे थे। किसी शरणार्थी को दूसरे शरणार्थी ने दो टूक कर दिया था। एक व्यक्ति ने दुकान पर अधिकार जमा रक्खा था, जो एक दूसरे व्यक्ति के नाम अल्लाट हुई थी—यह झगड़ा कई दिनों से चला आ रहा था।—

"हाय ! कीड़ी की तरह लोग आजकल एक दूसरे को मसल डालते हैं—"

"हाय ! गुरु की नगरी में ऐसा तो कभी नहीं हुआ था ? - "

"शान्ति की मां ! मैंने अपनी आँखों से देखा—बातों बातों में उसने तलवार निकाली और बेचारे को चारों शाने चित्त कर दिया—" सामने खिड़की में खड़ी हुई तीसरी औरत ने बाकी दोनों से कहा—

और आगे बाज़ार में जाकर मैंने देखा कि लोग भयभीत से दुकानें बन्द कर रहे थे। अगले चौक में जाकर मैंने पुलिस के सिपाही से कहा कि उधर बाज़ार में किसी को कतल कर दिया गया है—

"जहन्नम में जाएं!—हम तो आए दिन इनकी चख २ से हार चुके हैं—" और वह वहीं खड़ा रहा—

आगे गुरु-बाज़ार था, गुरु-बाज़ार के आगे माई-सेवां था, नुक्कड़ पर 'दरबार साहिब हर-मन्दिर'! सिक्खों का मक्का! जिसके पानी से छूते ही कौवा हँस हो गया था, जिसे दुनिया के तमाम लोग स्वर्ग-मन्दिर कहकर पुकारते थे; जिस की नींव मियां-मीर रोसे दरवेश ने रक्खी थी—

बाज़ार माई-सेवां के पहलू में एक तंग और सुनी गली थी. उस गली में से गुज़र कर मैं एक और बाज़ार में आ गया और वहां से फिर अपने अमृतसर के मित्र के हां पहुंच गया—

एक बहुत बड़ा प्राचीन ढांचे का मकान था। बहुत पुराना, मकान पर मकान और फिर उसके ऊपर एक और मकान; इस तरह उसकी कोई सात मंज़िलें थीं। गली में प्रवेश करते ही इस मकान की सीढ़ियाँ प्रारम्भ हो जाती थीं, फिर कहीं जाकर डयोढ़ी आती थी। डयोढ़ी में नई सीढ़ियों का सिलसिला आरम्भ होता था। ये सीढ़ियां दाएं-बाएं दोनों ओर से चढ़ती थीं। पुरानी और भुरभुराती हुई सीढ़ियाँ हर बार जब कोई उन पर चढ़ता था, तो सीढ़ियों को स्वयं नहीं पता होता था कि चढ़ने वाले को वह ऊपर

ले जा भी सकेंगी कि नहीं।--

मैं जानता था—मेरा मित्र सब से ऊपर की मंज़िल पर रहता था, फिर भी मैं सांस लेने के बहाने हर मंज़िल पर पहुंच कर उसका पता पूछ लेता—"जी !.....कहां मिलेंगे ?" हर बार यही जवाब मिलता—"जी। और ऊपर चढ़ जाइये।"

हर मंज़िल पर चाँदी ऐसे बालों वाले बूढ़े खूंसट और आंखों पर मोटी ऐनकें लगाए हुए झुकी हुई कमर वाली बूढ़ियां हाथ में 'गुटके' पकड़े हुए या अपने सामने ग्रन्थ खोले हुए पाठ-पूजा—करती हुई दृष्टिगोचर हुईं ! पिछली बार भी यही दृश्य इसी तरह देखा था—

"ये मेरे दादा जी है—" पिछली बार जब मैं अपने मित्र के हां आया था, तो उसने मुझे एक कमरे में लेजाकर एक वृद्ध से मिलाया। वह कमरा प्राचीन आकृति का गुरुद्वारा जान पड़ता था। छत से फानूस लटक रहे थे, दीवारों पर गुरुओं के चित्र सजे हुए थे। गुरू साहिब के एक ओर 'बाला' था और दूसरी ओर 'मर्दाना'—वृक्ष की एक शाखा से तोते का पिंजरा लटका हुआ था—

मेरे ये बुज़र्ग बस इसी कमरे में चौबीस घंटे रहते हैं। हर समय या तो जाप करते हैं या गुरुवाणी किसी से सुनते रहते हैं।" मेरे मित्र ने मुझे बताया—

मैं कठिनता से ऊपर की मंज़िल पर पहुंचा। सामने एक जंगले से बच्चे पीठ लगाए हुए कुछ पढ़ रहे थे। मुझे देख कर वे दौड़ पड़े और उन्होंने मुझे आकर घेर लिया।

सबकी आँखें कह रही थीं—"क्यों ? हमारे पिता जी से मिलेंगे ?"

"हां—हां—हां" मेरा जी चाहा कि झुंझला कर उनसे कहूँ—"आखिर इतना ऊंचा जब कोई चढ़ता है, तो उसके लिये घर भूलने की गुंजाइश ही कौन सी रह जाती है ?"

इतने में मेरा मित्र बाहिर आ गया। इससे पहिले कि मैं कुछ समझ सकता, वह दौड़ कर मुझसे लिपट गया। और यूंही मुझे बाजुओं में लपेटे हुए रसोई की ओर ले गया। चुल्हे के आगे प्रभुजोत बैठी हुई थी, यह उन की बीवी का नाम था। वह रोटी पका रही थी—

"जी—जी आए हैं !"

उनकी बीवी चुप रही--

"जी लाहौर वाले—जी आए हैं"

उनकी बीवी अब भी चुप रही—

"जी !—जी आए हैं, जिनकी कविताएं पढ़ कर आप एक बार कोयटे से लाहौर के लिये चल पड़ीं थीं।—"

लेकिन उनकी बीवी अभी तक वैसे ही मौन थी—

मेरे मित्र ने आगे बढ़ कर देखा—फिर चुपके से मुझे आकर कहने लगा—"जाप कर रही है। जब तक अष्टपदी पूर्णरूप से समाप्त न हो जाए, किसी से बात नहीं करती। थोड़ी सी देर के लिए वह मुझे ऊपर ले गया और ऊपर—

"यह मेरा कमरा है—"

मैं सोच रहा था—अब बैठेंगे और मैं किसी किताब को देख सकूंगा—।

"तुम्हें एक चीज़ और इसके ऊपर दिखानी है—" हम सबसे ऊपर की छत पर खड़े हुए थे—

"यह घर खास मेरे बाप के बाप के बाप...ने बनाया था—" मेरे मित्र मुझे बता रहा था—

धुंधलका फैल रहा था। सामने हर मन्दिर के जल में रौशनियाँ झिलमिला रही थीं। पानी में नीरवता सी फैली हुई थी और वे—रौशनियां कहीं पानी में डूब रही थीं और कहीं उभर रहीं थीं। ये वे रोशनियां थीं, जो हर-मन्दिर के झरोखों में से फूटती थीं और पानी की कोमल, पवित्र और निर्मल सतह पर छन छन के बिखर जाती थीं—

अभी तक लोग सिर झुकाए जैसे बंधे हुए चले जा रहे हों। लोग पंक्तियों के रूप में प्रवेश कर रहे थे और शबनम से नहाए निखरे सुमनों के समान बाहिर आ रहे थे। उजड़े बेघरों का घर, निराश इन्सानों की आशा और निराश्रयों का आश्रय ईश्वर वहाँ विद्यमान था—गुरु रामदास!

हर-मन्दिर के सोने के कलश हर-मन्दिर के स्वर्ण-गुम्बद, सोने की दीवारें, गुज़रती हुई सांझ का धूमिल-धुंदलका, धूप का विस्तीर्ण सुगन्धित-धूम; चम्पा-मोतिया गेन्दा और गुलाब की परागित-सुगन्धियां, अनगिनत अधरों से अनगिनत बार निकला हुआ परमात्मा के नाम का भजन, अनगिनत दिलों में दबी हुई अनगिनत आशाएं, कामनाएं

और अभिलाषाएं, अनगिनत सीनों में अनगिनत फूटती हुई आहें और मनुहारें—और इन सब के पीछे लाऊड-स्पीकर में से मधुर एवं हृदयाकर्षक जाप का कलरव उभर २ कर आ रहा था। जाप की ध्वनि धुल २ कर, निर्मल हो-होकर, मचल-मचल कर कानों में पड़ रही थी; अन्तर में खुभ रही थी। यह एक ऐसा प्रवाह था, मेरे मित्र ने बताया कि जो आठों याम निरन्तर प्रवाहित रहता था—अखण्ड, अटूट और अनथक जाप की यह रीति शतशत वर्षों से चली आ रही थी—

ऐसे उन्माद की दशा में मौन स्तम्भित खड़ा रहा। अन्धेरा और भी गहरा हो गया था। कञ्चन-रचित हर-मन्दिर की रौशनियां और भी भड़क उठीं थीं। दूर...अब प्रेमियों का जमघट हल्का होता जा रहा था। चम्पा और मोतिये से सुगन्धित-समीर मदिर-गति भर रहा था। लाऊड-स्पीकर में से आती हुई जाप-ध्वनि और भी मुखरित हो गई थी—

मैंने पूछा—"उन दिनों अब बमों के फटने के धमाके से धरती काँप जाती थी, उन दिनों, जब नफरत के नारे—आकाश की छाती पर सिकुड़ने डाल देते थे; रातों को जब आग से मुहल्लों में—गलियों में प्रकाशित किया जाता था; जब निर्दोष इन्सानों के क्रन्दन और कराहें पत्थरों को भी पिघला देती थीं; जब तलवारों, छुरों और नेज़ों से....."

'हां हां! उन दिनों भी जाप यूं ही हुआ करता था। अटूट, अखण्ड, निरन्तर—लगातार—!" मेरे मित्र ने मेरी बात को समझते हुए उत्तर दिया—।

कालो

कालो फिर भाग गई थी। सुबह से सब उस की तलाश कर रहे थे। शीहां सिंह दोपहर तक उसे ढूंडते २ थक कर चूर हो चुका था—"उसे चोर ले जाएं, आज एक बार मिल जाए मुझे—मिल जाए मुझे !" वह उठते-बैठते दांत कटकटा रहा था।

जब ज़रा साए ढले, तो वह फिर तलाश में निकल खड़ा हुआ। पूछते २ भटकते २ उसने क्या देखा कि कालो मिल्टरी की एक लारी की छाया में सड़क के किनारे बैठी जुगाली कर रही है—

कालो—जब हमारे हां आई, तो गली में, मुहल्ले में, अड़ोस-पड़ोस, चारों ओर उसका चर्चा हुआ। बन्द-बन्द

लहराती अपने बदन पर मक्खी तक न बैठने देती । उसके कोमल शरीर से नज़रें फिसली २ जाती थीं। उसका अङ्ग-अङ्ग प्यारा और सुन्दर था। पतली सी, लम्बी सी, सीधी तीर सी दुम, जो एक मोटे से गुच्छे पर जाकर खतम हो जाती। रेशम की तरह बारीक और मुलायम उसकी त्वचा माथे पर चांद-सितारा—

"पंज-कल्याण है"† मेरी माँ ने उसे देख कर कहा था। गोल और कुंडल उसके सींग, सुघड़ और सुशील, न किसी को देख कर सिर झटकती न लात उठाती। छोटे २ मासूम बच्चे उसके कदमों में लोटते रहते, उसके थन छेड़ते रहते—

शीहां सिंह बड़ा खुश था, जैसे उसे कोई सौगात मिल गई हो। कालो को देख २ कर उसका जी नहीं भरता था, वह दिन मे कई २ बार उसे नहलाता-धुलाता, मालिश करता, उसके बैठने की जगह को संवारता। बाकी पशुओं की ओर से वह उपेक्षित हो गया। गाएं उसकी तरफ मुंह उठा २ कर तका करतीं—वह सुनी-अनसुनी कर देता, वह तो बस कालो का ही होकर रह गया था। कभी कालो के लिए कुछ कर रहा है कभी कुछ। एक मिनिट भी चैन से न बैठता—

शुरू २ मे जब वह आई, तो अपना मुंह उठाये अहाते के उस पार देखती रहती। ऊंचे डकार २ कर किसी को

†पंजाबी में पूर्ण-सौभाग्यवती का चिन्ह—

पुकारती रहती, जैसे किसी को बुला रही हो, गिले-शिक्वे कर रही हो।

'जी! यह मसोसी हुई है, जल्द ही घुल-मिल जाएगी।" भैंस की निकली हुई पसलियों की तरफ देखते हुए शीहाँ सिंह ने मेरी ढारस बंधाई—

"रईस घर की है, फूलों की सी तबीयत होती है ऐसे माल की। खुदबखुद अभ्यस्त हो जाएगी। हमसे ज्यादा इसकी सेवा कौन कर सकता है?—" और फिर चुन २ कर छोटा २ कोमल २ घास उसके मुंह में देता जाता। कभी कालो खा लेती और कभी उगल देती—

ज्यों २ दिन गुज़रते गए, त्यों २ कालो ने खाना-पीना, ढंग से उठना-बैठना शुरू कर दिया। और उसका दूध बढ़ने लगा। दोनों वकत बलटोहियां भर २ देती। दोहते २ शीहाँ सिंह की शहतीर ऐसी मज़बूत बाहों में गिलटियां पड़ पड़ जातीं—

पूरे दो महीने गुज़र गए, लेकिन इसके बावजूद शीहां सिंह को कालो के लिये हमेशा सावधान रहना पड़ता। जब कभी मौका मिलता वह खिसक जाती और प्रायः तेज २ पग भरती, सिर उठाए उसी सड़क की ओर हो लेती, जिधर से वह आई थी—

हमारे शहर से दस मील की दूरी पर एक नदी है, जिसके किनारे पर मैंने कालो को खरीदा था। उस समय मेरी जेब में सिरफ एक अठन्नी थी और उसके बदले में कालो के मालिक ने उसे बेच दिया। बात यों हुई कि इस

नदी के किनारे मुसलमान-शरणार्थियों का एक कैम्प था। चार हज़ार मर्द, औरतें, बच्चे, ढोर-डंगर, गाएं-भैंसें, घोड़े और गड्डे कुछ दिनों से वहां रुके हुए थे। अगले शहर के हिन्दू-सिक्ख ज़रा शोख थे। इस लिये जब भी उस शहर से कोई काफिला गुज़रता, तो कर्फ्यू लगा दिया जाता। सड़क के किनारे बन्दूक-बरदार पुलिस को पहरा देना पड़ता। दूसरी सड़क पर एक पैदल काफिला पिछले दस दिनों से गुज़र रहा था, कहीं पन्द्रह दिनों बाद इन लोगों की बारी आई थी। ये लोग नदी किनारे पड़े रहे, पड़े रहे और फिर एक दिन बारिश हुई बारिश ज़ोर पकड़ गई। दिन भर बारिश होती रही, रात भर बारिश होती रही—दूसरे दिन, दूसरी रात—और इसी तरह लगातार चार दिन तक। पांचवें दिन सुबह-सवेरे ही चारों ओर हाहाकार मच गया। पुल टूट गए, सड़कें टूट गईं, खम्भे उलट पड़े, तारें बह गईं। और जब हम इस नदी के किनारे पर पहुंचे, तो वहां सिरफ चार आदमी खड़े थे। जहाँ पर पिछली शाम को सी. आई. डी. वाले ने चार हज़ार मर्द, औरतें और बच्चे शुमार किये थे, वहां केवल चार नंग-धड़ंग आदमी खड़े थे। न उन्हें अपने ज़िन्दा होने का विश्वास था और न हम मान सकते कि वे ज़िन्दा हैं। कोसों तक, चारों ओर कीचड़ ही कीचड़ दिखाई देता था, और उस कीचड़ में चप्पे २ पर फूलती हुई मोटी २ लाशें थीं, आदमियों की औरतों की, बच्चों की पशुओं की, कुत्तों की और आस्मान गिद्दों से भर गया था। कीचड़ में कहीं २ टखनों तक पानी खड़ा था, जिस मे पीतल और अलमोनियम

के ब'न तैर रहे थे। लाल २ 'सालू'‡ तैर रहे थे, चितकबरे दुपट्टे तैर रहे थे, छकड़े औंधे मुंह पड़े थे। गड्डों के पहियों में गर्दनें फंसी हुई थीं। सामने रेल का पुल टूटा पड़ा था और उसकी पटड़ी लटक २ कर नीचे आ रही थी। पुल के उस किनारे के एक निकास-द्वार में अनगिनत लाशें लकड़ियों की तरह फंसी हुई थीं। किसी की गर्दन अन्दर धंस गई थी और टांगें ऊपर को उठ गई थीं। किसी का टूटा हुआ बाज़ू तोरी की तरह झूम रहा था। कई सिर लटक रहे थे, जिनकी टांगें बस अड़ी हुई थीं। औरतों की नंगी-नंगी छातियां, पर-पुरुषों, अनजाने-अप्रिय मर्दों के साथ चिपकी हुई थीं। फूल से बच्चे कीचड़ में लथपथ पड़े हुए थे। उनके मुंह से, नाक में से गदला पानी आ जा रहा था।

और——चार नङ्ग धड़ंग आदमी हमारे सामने अचम्भित से खड़े हुए थे। लौटते वक़्त हमने उन्हें अपने साथ आने के लिये कहा, लेकिन वे दहाड़ें मार कर रोने लगे किसी सिक्ख पर कोई मुसलमान शरणार्थी कैसे विश्वास कर सकता है?—आखिर जब हम चलने लगे, तो उनमें से एक ने हाथ जोड़ कर कहा—"मेरी यह भैंस ले जाओ, मैंने इसे उमर भर बच्चों की तरह रक्खा था। आज इसने हम चारों की जानें बचाई हैं। इस क़यामत से ज़रा ही पहले यह भाग खड़ी हुई थी और हम चारों भाई इसका पीछा करने को निकल पड़े। और इसके बाद यहां तूफ़ान

‡विवाह में बधू के मांगलिक-वस्त्र।

आया और सबों का सफाया कर गया—

तब से कालो को ज्यू ही मौका मिलता, पुल की ओर भाग निकलती। कभी २ यों अनुभव होता, जैसे अपने आप से बातें कर रही हो—बेअख्तियार!—कभी आंखें फाड़ २ कर सामने देखती रहती, कभी चारा खाते २ छोड़ देती चारा यूं ही पड़ा सूख जाता। उसके मुंह पर मक्खियां बैठनी शुरू हो जातीं, उसकी आंखों पर आ बैठतीं। उसकी लम्बी २ दुम से चिमट जातीं—शीहां सिंह को यह बात एक आंख नहीं भाती थी।

अगर कभी—आठ दस छकड़े एक साथ सड़क से गुज़रते, बैलों के गलों में पड़ी हुई घंटियों का कलरव सुन कर वह रस्सा तुड़ाना शुरू कर देती और ज़ोर से डकारती, सिर को झटकती, बहुत बेचैन हो जाती। और अगर उसे खोल दिया जाता, तो फौरन भाग कर वह छकड़ों में जा मिलती और अन्धाधुन्द उनके साथ चले जाती—चले जाती, जैसे उनके साथ उसका कोई रिश्ता हो, कोई सम्बन्ध हो।

शीहाँ सिंह कालो की इन हरकतों से बड़ा हैरान होता। वह सोचता—पिछले दिनों उसने बड़े २ चतुर मुसलमानों का प्राणान्त किया था। लेकिन यह भैंस उसके काबू में नहीं आती थी—छलावे की तरह निकल कर उसे परेशान करती रहती।

शीहां सिंह प्राय; अपने फिसादों के कारनामें सुनाया करता। अपने गाँव में उन्होंने किस तरह मुसलमानों को उलटा लटका लटका कर मारा, उनकी मस्जिदों को भ्रष्ट

किया, उनकी फसलें नष्ट कर दीं और फिर किस प्रकार उन की गाड़ियों पर टूट पड़े। किस तरह उन्होंने खून की नदियां बहाई, किस तरह चुन २ कर मुसलमानों को कतल किया। और नीले बुरकों वाली और गोल २ ऐनकों वाली तथा गिटमिट २ करती हुई सुन्दर लड़कियों को पकड़ कर ले आए। किस तरह छोटी २ बच्चियों को उन्होंने बड़ी २ शिलाओं पर दे पटका, किस तरह बूढ़ियों को कष्ट दे २ कर उनका बन्द २ काटा। किस तरह जवानों को मारा—और शीहां सिंह को स्वयं भी इस बात का ज्ञान नहीं था कि उस ने कितने मुसलमानों के खून से अपने हाथ रंगे। उसे तो केवल दसबीसी तक गिनना आता था।

तो फिर भला कालो की उसके सामने क्या हस्ती थी? उसे तो वह दो दिनों में ही सीधा कर लेता। एक दिन मैंने उससे पूछा—"क्यों भाई शीहां सिंह! तूने इन फिसादों से पहले भी किसी को मारा था?"

"वाहगुरु का नाम लो जी!" परमात्मा की सौगन्ध! मैंने तो कभी किसी चींटी पर भी पांव न रक्खा था।" शीहां सिंह ने एक सरल आदमी की मोटी सचाई के साथ जवाब दिया—

"और अगर शीहाँ सिंह! अब तुझे किसी को मारना पड़े—तो?....." मैंने उससे फिर प्रश्न किया—

"नहीं सरदार जी! गुरू की सौगन्ध! न जाने उस समय क्या हो गया था? अब तो किसी की ओर आंख

उठा कर नहीं देखा जा सकता। वे बातें ही नहीं रहीं अब—"

अब तो चाहे शीहां सिंह को कोई दस गालियाँ सुना देता, तो भी वह पी जाता। वह स्वयं हैरान था कि उस समय उसे क्या हो गया था? जैसे कोई किसी मामूली से कीड़े को मार दे। बस, कुछ इस तरह वह भाग २ कर दौड़ २ कर, घेरे डाल २ कर मुसलमानों को कतल करता रहा। और ज्यों २ उसकी तलवार बदनों में खुभी, तेज़-धार होती गई।

और फिर शीहाँ सिंह कालो की मालिश करने लगा। साथ ही साथ घास चुन २ कर उसके मुंह में देता जाता। मालिश करते २ उसके सींगों को चमकाता, उसकी आंखें साफ करता, उस की दुम को संवारता—और शाम भर चनों का एक २ दाना चुन के, रत्ती २ खली छांट २ कर उसके लिये 'गुताबा' तैयार करता—

ज्यों २ कालो की सेवा-सुश्रूषा होती, त्यों २ उसका दूध बढ़ता! त्यों २ शीहां सिंह उसका दीवाना होता जाता। और पढ़ते-बढ़ते उसका दूध पच्चीस सेर हो गया; तेरह सेर एक समय और बारह सेर दूसरे समय—बलटोहियां भर जातीं, डोल भर जाते—

जो भी सुनता, उसे विश्वास न आता। प्रान्त भर में इस जैसी भैंस किसी के पास नहीं थी। पशुओं की मंडी में कालो को देख-देख कर अफसर हैरान होते, कालो को एक हज़ार रुपया इनाम मिला। और अगर शीहां सिंह उसे

बेचना चाहता, तो मिलट्री डेरी-फार्म वाले तीन हज़ार देने के लिये आग्रह करते रहे थे—

लेकिन शीहां सिंह तो कालो की ओर हल्की नज़र भी सहन न कर सकता था। मंडी से लौटते समय एक कूएं से उसने कालो को ठंडा-ठंडा पानी पिलाया और दम लेने के लिये एक आम के वृक्ष की छांव में दोनों ठहर गए। तने के साथ पीठ लगा कर खड़े २ शीहाँ सिंह कालो की ओर ताकता रहा—ताकता रहा। और फिर न जाने किस समय खड़े-खड़े उसे नींद आ गई ?—

आध घंटे के बाद शीहां सिंह हड़बड़ा कर जागा, कालो गायब थी। चारों ओर उसने नज़र दौड़ाई, लेकिन वह कहीं भी दिखाई न दी। आखिर पदचिह्नों पर वह उसके पीछे भागा। लम्बे २ उगों के निशान देख कर उसने अनुमान लगाया कि कालो निहायत तेज़ी के साथ भागी थी—

दम भर की नींद में शीहाँ सिंह ने कितना बुरा स्वप्न देखा था कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की लड़ाई हो रही है और कालो - पाकिस्तान वालों को इस देश की तमाम खबरें पहुंचा रही है। रात को वह रस्सा तुड़ा कर भाग जाती और फिर भेद बता कर सुबह-सवेरे खूंटे पर लौट आती—

शीहाँ सिंह भागता रहा—भागता रहा। लेकिन निशान अभी समाप्त नहीं हुए थे। कड़कती दोपहर में, चिलमिलाती धूप में—उसका अंग २ पसीने से तर हो रहा था और कालो भागी भी तो झाड़ियों में से, नालियों में से, खेतों में से—

निदान पांव के निशान बड़ी और मज़बूत सड़क पर जाकर समाप्त हो गए और उसके बाद उसका पता लगाना बड़ा मुश्किल था। सड़क पर मिल्ट्री की लारियों का एक काफिला जा रहा था। एक २ मिनट में दस २ लारियां गुज़रतीं। शीहां सिंह ने सुन रखा था कि कहीं कांश्मीर देश में लड़ाई छिड़ी हुई है।

थका हुआ, हारा हुआ, श्रमित सा शीहां सिंह सड़क के किनारे २ चलता गया—चलता गया। सांझ हो गई थी—

आखिर उसे एक मिल्ट्री की लारी खड़ी दिखाई दी, जो शायद खराब हो गई थी और लारी से दस कदम की दूरी पर कालो एक कीकर तले बैठी जुगाली कर रही थी। जैसे वह अपने घर, अपने आंगन में बैठी हो, ऐसे संतोष से जैसे कुछ हुआ ही नहीं था।

और शीहाँ सिंह का गांव आठ कोस पीछे रह गया था—

"अरे भाई! यह कौन सी सड़क है भला" शीहां सिंह ने, लारी को दुरुस्त करते हुए ड्राईवर से पूछा—

"इसे जरनेली सड़क कहते हैं दोस्त!" उसने जवाब दिया—

"और यह किधर को जाती है?" अपना साफा उतार कर शीहां सिंह ने कालो की गर्दन में डालते हुए फिर पूछा—

"यह?—यह—यह सीधी—पाकिस्तान को जाती है—" ड्राईवर ने जवाब दिया और अपनी फौजी टोपी उतार

का एक तरफ रख दी—शीहां सिंह क्रोधित होकर कालो को खींचे लिये जा रहा था—"हूं !.....तो यह सड़क पाकिस्तान को जाती है।" वह रह २ कर मुंह में बुडबुडाता। हथौड़ों की तरह यह वाक्य उसके दिमाग में बल उठता—"यह सड़क पाकिस्तान को जाती है !—"

और शीहां सिंह को याद आया कि किस तरह जिन मुसलमानों को फौजियों ने आकर बचा लिया था, वे मिल्ट्री की लारियों में लाद २ कर पाकिस्तान भेज दिये गए थे। किस तरह फौजी ट्रक आज-कल भी मुसलमानों के कैम्पों में से उन्हें निकाल २ कर पाकिस्तान ले जा रहे थे। किस तरह यही लारियों वाले फौजी उसके गांव में रहतीं—बसतीं हुई मुसलमान लड़कियों को निकाल कर ले जाते थे।

और यह सोचते २ जैसे शीहां सिंह की कड़ियल बाहों से चिनचिनाहट सी होने लगी। उसके बड़े बड़े हाथ जैसे फौलादी बन गये। और उसकी बफरती हुई छाती में से सांस यूं आने-जाने लगा, जैसे कोई धौंकनी फैलती और सिकुड़ती रहे। उसके पांव मन २ भर के हो गए। हर कदम पर उसे यों अनुभव होता, जैसे उसके पांवों के दबाव से धरती बैठती चली जाती है—

शीहां सिंह चलता रहा—चलता रहा। एक नज़र उठा कर भी उसने कालो की ओर न देखा। और जब वह अपने शहर के समीप पहुंचा, तो अन्धेरा काफ़ी गहरा हो चुका था। बस, एक नाला पार करना था, फिर उसके शहर की बस्तियाँ सामने दिखाई देने लगेंगी।

नाले के किनारे पर पहुंच कर शीहाँ सिंह ने अपना साफा कालो की गर्दन से निकाल लिया। उसे हांकता—चलाता एक बड़े शीशम के नीचे ले गया और उसके साथ मज़बूती से उसकी गर्दन को बाँध दिया—फिर अपना तहबंद उतारा। सौ २ के दस नोट गिर पड़े, जो शीहाँ सिंह के भारी जूते तले आकर मसले गए। और फिर उसने तहबन्द के दो टुकड़े किये। एक टुकड़े से कालो के अगले पैरों को जकड़ा और दूसरे से पिछली टांगों को। फिर उसने अपनी तलवार म्यान से बाहिर निकाली और फिर.....असीम क्रोधित हो कर और दाँत कटकटा कर उसने कहा—

"चल ! तुझे पाकिस्तान की सड़क पर डाल दूं।" शीहाँ सिंह उसे मारता रहा—मारता रहा। कालो की गर्दन दस-बीसी आदमियों की गर्दनों से कहीं ज्यादा मोटी थी। उसकी तलवार जैसे थक कर रह गई, उस के बाज़ुओं में जैसे गिलटियाँ पड़ गई और शीहाँ सिंह जैसे लहू के जोहड़ में खड़ा था। खून के छींटों से जैसे वह लथपथ हो गया था। और तड़पती, सिर पटकती, एड़ियाँ रगड़ती कालो ठण्डी हो गई।.....

पाकिस्तान हमारा है

पहले उसका नाम रामरक्खी था। अब उसका नाम अल्लारक्खी रख दिया गया। वैसे उसे पहले भी लोग रक्खी कहते थे और आज भी उसे रक्खो के नाम से पुकारते हैं।

उस रात,—जब ढोल बजे, जब नेजे चमके, जब तारे टूटे, जब भूचाल आया,—मालूम नहीं, रक्खी किस तरह सोई-सोई उठी; मालूम नहीं, किस तरह उसने 'गठियाली'[1] उलाँघी; पता नहीं, किस तरह सोई-सोई वह खेतों में से गुजरी; मालूम नहीं, किस तरह वह सोई-सोई एक गढ़े में जा पड़ी।

और पूरी तीन रातें, तीन दिन, वहीं वह दुबकी रही।

१—घर के गिर्द एक तरह से दीवार का घेरा।

उसके नीचे से लहू निचोड़ती लकीर गुज़र गई। उसके ऊपर से दुनालियों की गोलियाँ गुज़रती रहीं। उसके कानों में कई जाने-पहिचानों की चीख़ें पड़ीं, जिनके साथ उसका दूध का रिश्ता था।

और फिर घोड़ों की टापें; लारियों, मोटरों और ट्रकों की गूंज उसे सुनाई दी।

अगली सुबह सारी की सारी घाटी ऐसी थी, जैसे हमेशा कभी हो। बैलों के गले में पड़ी हुई घंटियाँ धीरे-धीरे बज उठीं; रेवड़ और ढोरों के झुण्ड निकलने लग गए,—जैसे हमेशा गाँवों में होता है। कूओं की मधुर री-री, ठक्-ठक्, चारों तरफ गूंजनी शुरू हुई। भीड़ों की भीड़, और पंछियों की पातें आसमान पर उड़ान भरने लगीं। दूध में बिलोनियाँ डाली गईं, आँगनों में से धूएं उठने लगे और मस्जिद में से बाँग की आवाज़ सुनाई दी।

राम रक्खी कितनी ही देर इन्तज़ार में रही, पर आज मन्दिर में टन टन न हुई और न गुरुद्वारे में से शङ्ख की आवाज़ आकर उसके कानों में पड़ी।

और जब पीली-पीली धूप निकली, रामरक्खी उठकर पीछे से अपने पड़ोसियों के आँगन में जा पहुंची। हंसते हुए, खेलते और खाते हुए, सब-के-सब उसे देखकर हक्के-बक्के रह गए। औरतों ने सोचा—जैसे खून की नदी में से रक्खी उभर आई है, और मर्दों ने जाना—जैसे उनके साथ कोई चाल चली गई है।

कड़ियल जवान शेरबाज़ का मुंह तमतमा उठा। उस की आँखों में फिर एक बार पशुता नाची। मुश्किल से ढीली हुई उसकी रगें फिर से तन गईं और पीठ के नीचे से दमकती हुई छुरी खींचकर वह बड़े क्रोध से उठा।

इस छुरी ने कई धड़ चीरे थे, कई खोपड़ियाँ बींधी थीं, कई गर्दनें उतारी थीं;—मगर रक्खी से कोई दो कदम दूर उसकी छुरी जैसे उठी की उठी रह गई।

रक्खी और उसके बीच उसकी मां थी, उसका बाप था, उसकी बहिन थी। न-जाने किस तरह पलक झपते वे रक्खी के ऊपर आ पड़े और उसे चोट न आने दी।

वह घड़ी गुज़र गई, लेकिन उसके बाद शेरबाज़ सदा हैरान होकर सोचता,—किस तरह रक्खी पर उसे कहर आ सका। उसकी इस्पात की दमकती छुरी उसे हमेशा लज्जित करती और वह बहुत झेंपता। और एक दिन वह उसे तोड़-मोड़ कर कुएं में फेंक आया।

'धरेक' (पेड़ के नीचे—जहाँ शेरबाज़ रक्खी को मारने के लिए उस पर टूट पड़ा था—रक्खी कभी रंगीन पीढ़े (मोढ़े) पर बैठती—जिस पीढ़े के साथ घुंघरू लगे हुए थे, जिस पीढ़े पर शेरबाज़ की मां बैठती थी, जब वह ब्याही हुई आई थी।

एक दिन शेरबाज़ ने रक्खी के ऊपर छुरी उठाई, और फिर दूसरे दिन गाना† बाँधकर उसे अपनी पत्नी बना

†विवाहिक-प्रथा।

लिया। रक्खी तो उसे सदा अच्छी लगती थी। बचपन में वे इकट्ठे खेलते इकट्ठे गुम हो जाते और इकट्ठे ढूंढ़ते, इकट्ठे दौड़ते, इकट्ठे खाते, इकट्ठे हंसते और जब वह बड़ी हो गई, शेरबाज ने हल चलाते कई 'टप्पे' उसकी याद में गाऐ। कई बार उसके सपनों में रक्खी बार-बार आया करती और जब वह और बड़ी हो गई, शेरबाज उसे लुक-छिपकर देखा करता —रक्खी को चाहे पता हो चाहे न हो।

सवेरे मुंह अंधेरे उठकर रक्खी दूध दोहती, भैंस का, गौओं का, बकरियों का। फिर दूध बिलोती, सारे घर को संभालती, समेटती। लीप-पोतकर उसने शेरबाज की पुरानी हवेली को शीशे की तरह चमका दिया। साँझ होने पर हर पशु के लिए 'गुनावा' करती, अपने हाथों से उन्हें खिलाती, भैंसों का दूध सवाया हो गया। बैल दौड़-दौड़ कर शेरबाज ऐसे हलियों को थका देते।

अपने सास-ससुर के रक्खी पांव धो धोकर पीती; कभी उन्हें पलंग से न उतरने देती! अड़ोस-पड़ोस की औरतें देख देख कर हैरान होतीं, मुंह में अंगुलियां डाल-डाल कर देखतीं। गली-मुहल्ले के हर मोड़ और हर कोने में उसने सहेलियां बना लीं। तरिंजनों* में वह सबको पछाड़ती और शोर-सा मचाए रखता।

सारे गांव में किसी को स्वेटर का नमूना सीखना होता, रक्खी सिखलाती। किसी को आंख में 'चुटकी'

*ग्रामीण औरतों की चर्खा सभा।

खुश्क दवाई) डलवानी होती, रक्खी के पास आता। किसी का कोई भेद होता, वह रक्खी को बताता। रक्खी जैसे बताशे की तरह घुल-मिल गई थी।

शीशम-तले कभी-कभी झूला झूमती, रक्खी दूर-दूर तक हरियाली—और हरियाली के पीछे अपने गांव की नाटी-नाटी पहाड़ियां निहारती,—और वह हैरान हो जाती किस तरह लोग यहां से चले गए। अपने तालाबों का मोतियों-सा निखरा पानी ताककर उसका जी चाहता,—वह यहीं समा जाए। उसे छोड़कर कोई किसी तरह कहीं नहीं जा सकता। उन भुट्टों को—जिनका बीज उसके बाप भाइयों ने डाला—कभी-कभी वह गले से लगा लेती और वायदा करती—वह कभी उन्हें छोड़कर नहीं जाएगी।

वह हैरान थी—उन गलियों को कैसे कोई छोड़कर जा सकता है जहां वह खेलती रही हो। उन बेरियों के बेर जैसे पुकार रहे हों उन्हें, जो चले गए हैं।

जब एक बार पाकिस्तान का कोई लीडर गांव के पास से गुजरा, रक्खी सारी सुबह सेहरे पिरोती रही। कड़कती दोपहर में पाकिस्तान का झण्डा पकड़कर औरतों का उसने जलूस निकाला और सड़क किनारे अपने कौमी अगुए की इन्तज़ार में 'पाकिस्तान हमारा है' और कई दूसरे गीत गाती रही। जब लीडर की मोटर गुजर रही थी, उसने ज़ोर-ज़ोर से 'ज़िन्दाबाद' के नारे लगाए,—और फूलों की बारिश से धरती अट गई।

और इस तरह रक्खी के दिन गुज़र रहे थे, इस तरह रक्खी के हफ्ते गुज़र रहे थे, इस तरह रक्खी के महीने बीत रहे थे।

एक दिन गली में से गुज़रती हुई रक्खी को आवाज़ सुनाई दी—'अरी रक्खी !'

और दूसरी घड़ी उसका भाई उसके गले से लगा हुआ था। कितनी ही देर दोनों रोते रहे। रक्खी बहुत ऊंचे ऊंचे रोई। उसे यह भी भूल गया कि पास ही एक अनजान आदमी, जो सिपाही सा दीखता था, खड़ा जैसे उनकी इन्तज़ार कर रहा था।

आखिर जब उनका विरह टूटा, उसके भाई ने सिपाही की तरफ इशारा करके कहा—'इसे ले चलो। मेरी बहिन मुझे मिल गई है।'

'लेकिन कहाँ ?' रक्खी एक मिनिट बाद जैसे सोते से जाग घबराकर पूछा।

दूर—दूर किसी दूसरे देश में जाने के लिए रक्खी तैयार न थी। कौन जाने, वहां इस गाँव जैसी खुली खुली गलियां हों या न हों, घनी—टण्डी छाया हो या न हो ? क्या पता कि वहाँ इस गांव जैसे काग हों या न हों, जो मुंडेरों पर आकर बैठ जाते हैं। और फिर मालूम नहीं, दिल जाने कैसा होने लगता है.....

उस शाम—जब वह बाहिर गई, उस टीले को जिस पर खड़ी होकर वह शेरबाज को खेतों में काम करते देखा

करती थी, उसने आलिंगन में ले लिया—'मैं नहीं जाऊंगी, मैं नहीं जाऊंगी।'

एक अंगूरी लटकती बेल के गुच्छे को उसने कोमलता से छूकर कहा—'मैं कभी नहीं जाऊंगी।'

उसने बछड़े की आंखों से आंखें मिला के उसकी थुथनी को चूम लिया। फिर अपने दालान की छत तले आके उसने जोर से कहा—'मैं हमेशा यहीं रहूंगी।'

अपने चूल्हे के पास बैठकर भी उसका रोना न रुका —'मेरा अपना यह चौका है?'

वह चीख उठी।

उस दिन पुरवे की ठण्डी-ठण्डी हवा गति भर रही थी। रक्खो ने तारों के सामने सौगंध खाई, चांद की मनुहारें कीं—पीरों, फकीरों की उसने मिन्नतें मानीं, देवी-देवताओं को मानने का प्रण किया।

सामने वह गढ़ा था जिसमें पिछली बार रक्खो गिर गई थी और किसी ने न देखा था लेकिन अब वह कितनी बदल गई थी, कितनी मोटी वह दीवनी थी। किस तरह अब वह पहले की भाँति छलांग लगा सकती थी। वह सीप— जिसमें कोई मोती हो— उछला नहीं सकता!

'अरे ओ शेरबाज, अब तेरी छवी को क्या हो गया है?' रक्खो उससे बार-बार पूछती।

शेरबाज मूक निश्चल अपने पलंग पर पड़ा हुआ था। जब से वह नम्बरदार के घर से शाम को लौटकर आया, न वह एक शब्द बोला, न उसने कुछ खाया-पिया।

'शेरबाज, मैं तुझपर लाख भाई वार दूंगी।'

शेरबाज फिर भी चुप था। उसके तमतमाए हुए चेहरे, उसकी लाल-लाल आंखों में जैसे आँसू जमे हुए थे।

'ओ मेरे बाज शेर, उठ कहीं भाग चलें!'

शेरबाज के बिस्तर से जैसे सेंक आ रही थी। वह चुप था,—निश्चल था, जैसे बिलकुल बे-सुध...

और वह बोलता भी कैसे। नम्बरदार ने उसे सब कुछ बता दिया था। रक्खी हिन्दू लड़की थी, उसे ज़रूर हिन्दुस्तान भेजा जाना था। पन्द्रह अगस्त के बाद जितने कलमे पढ़े गए, उनसे कोई भी मुसलमान न बन सका था। यह बात अपनी सरकार स्वयं कह रही थी। और फिर इधर से हर हिन्दू लड़की को भेजकर उधर से मुसलमान लड़की लाई जानी थी। रक्खो, जो हिन्दू घराने में पैदा हुई थी,—उसके बदले एक इस्लाम में पैदा होने वाली लड़की को आना था।

शेरबाज निश्चल—बेसुध-सा पड़ा था।

अगले दिन, अभी मुश्किल से दिन की रोशनी उभरी ही थी कि फौजी लारी आंगन में आकर खड़ी हो गई। लम्बी-लम्बी बन्दूकें लिये सिपाहियों को देख रक्खी बिल-बिला उठा—'मैंने नहीं जाना...मैंने नहीं जाना...क्या हुआ अगर इसका नाम बदल गया...यह हमारा अपना देस है... ये पत्थर हमारे अपने हैं...ये पत्ते हमारे अपने हैं...अभी तो उस 'धरेक' ने बड़ा होना है, जिसे मैं पानी दे दे कर पालती रही...'

और उसकी आँखों से आँसू न रुके—'अरे ओ' शेर-बाज, तू बोलता क्यों नहीं...बताता क्यों नहीं...मैं तेरी अमानत.....'

रक्खी धड़ाम से नीचे गिरी और बेहोश हो गई।

जितनी देर शेरबाज और रक्खी दालान में रहे, सिपाहियों ने फिर सोचा, पंचों ने अपने दिमाग लड़ाए, नम्बरदार की राय ली गई—लेकिन कौमी सरकार की आज्ञा थी। पाकिस्तान को इन छोटी-छोटी बातों से बनना था, इन मामूली-मामूली बातों से बिगड़ना था। पाकिस्तान अभी बच्चा था, जिस से हर किसी को लाड़-प्यार करना था—जिसकी गलत बातों को भी मानना था।

लारी आँगन में खड़ी रही—जा भी कैसे सकती थी, आखिर कोई दो घंटे बाद दालान का द्वार खुला। पहले रक्खी निकली, पीछे शेरबाज।

रक्खी लाल रेशमी जोड़ा पहने हुए थी। उसके सिर पर गोटे-किनारों वाला आँचल था जो उससे संभाला न जाता था। उस के माथे पर, उसके कानों में, उसकी नाक पर, बाहों में, गले में,—पांव तक कोई जगह खाली न थी जहां कोई गहना न हो—जैसे सोने से लदी हुई हो,—शेरबाज की मां के, रक्खी के अपने, शेरबाज की दादी के और उससे पहले के, सब जेवर उसने रक्खी को पहनवाए। छमछम करती हुई वह लारी में आ बैठी—सबके सब हैरान थे, अचम्भित थे।

शेरबाज फिर अन्दर गया। उसने उसका रंगीन पीढ़ा लाकर लारी में रखा, फिर उसका चन्दन का चर्खा लाकर रखा; फिर उसका शीशों वाला पलंग रखा—फिर ट्रंक रखवाए, जो रक्खी के लिए फुलकारियों और कपड़ों से भरे हुए थे।

आखिरी बार शेरबाज अन्दर गया और रक्खी को आकर एक पंखा और एक कटोरा दिया। कटोरे पर आँका हुआ था—'शेरबाज खां' और पंखे पर रक्खी ने स्वयं लाल हरे धागों से काढ़ा था—'पाकिस्तान हमारा है!'

——:o:——

तूँ खा !

सामने का मोड़ मुड़ते ही हिन्दुस्तान शुरू हो रहा था—और एक मस्ती में, एक नशे में उसकी आँखें मुन्द गईं।

और मुन्दी २ आँखों के साथ उसने देखा कि स्वतन्त्र भारत में दूध और अमृत की नहरें बह रही हैं, निडर-बेधड़क हवाएं घूमती फिरती हैं। क्षितिज तक हरे-भरे लहलहाते हुए खेत बढ़े जाते हैं। स्वतन्त्र-भारत की फैक्टरियाँ मिलें और कारखाने लाखों और करोड़ों का पेट पाल रही हैं। चारों तरफ हरेक चीज़ की बहुतायत है—कोई भूखा नहीं कोई नंगा नहीं; कोई बीमार नहीं। और उसे यों अनुभव हुआ जैसे गाँधी और जवाहर लाल आस्मानों से उतरते हुए देखता हैं। और—उसके दिल की गंभीर गहराइयों से एक

।शीर्वाद निकला ।— स्वतन्त्र—भारत देवताओं का देश ।

फिर एक गहरा ठण्ड सांस—जैसे सारी की सारी डरी हुई, दुबकी हुई, भरी हुई लारी जीवित हो उठी हो !

वे अब स्वतन्त्र-भारत की धरती पर थे ।

बुड़-बुड़ा कर उसने पलकें उठाईं और चीख उठा—"खड़ा करो, खड़ा करो !" और इससे पहले कि ट्रक को खड़ा किया जाता—वह छलांग लगा कर बाहर जा पड़ा । लारी से बीस कदम दूर वह भागा २ पहुंचा और एक हाथ अपने बाएं कान पर रख कर, दूसरे बाजू को उठा कर उसने नारा लगाया ।

"पाकिस्तान ! मुर्दाबाद !!"—फिर एक और—एक और—एक और—इसी तरह पूरे पांच !

उसके सफेद दूधिया बाल खड़े हो गए । झुर्रियों से ढंका हुआ चेहरा लाल हो गया । उसके हफ्तों के भूखे, प्यासे, श्रान्त और दुर्बल जोड़ों में एक जोश, एक शक्ति कौंद गई । बुढ़ापे से झुकी हुई कमर अकड़ गई, आंखें चमकने लगीं । पपड़ियाँ जमे हुए होंठों में गुलाब की सी ताज़गी आ गई । मैले-चीकट, चीथड़े २ कपड़े लहराने और उछलने लगे । उल्लास से तमतमाता, मटकता और लहकता हुआ वह ट्रक की तरफ आया । आते ही पहले उसने अपनी बड़ी बेटी का माथा चूमा, फिर छोटी बेटी का—और फिर ट्रक चल पड़ा ।—

वह सोच रहा था—क्या हुआ, अगर उसकी पत्नी मारी गई थी ? क्या हुआ, अगर उसकी विशाल अट्टालिका

जैला कर राख कर दी गई थी ? क्या हुआ, अगर उसे बच्चियों को बचाने के लिए जेवरों की गठरी भर कर देनी पड़ी ? क्या हुआ, अगर उसके बुढ़ापे को ठोकरें लगाई गई ? क्या हुआ, अगर गाँव के उस चौधरी ने अपनी सन्तान के सामने-गुण्डों की मिन्नतें की थीं। उनके सामने माथा रगड़ा था—?

"लेकिन अपनी सरकार आखिर हमारे पास पहुंच गई थी। दूर—बहुत दूर—एक गोदी में उनका गांव आबाद था, मगर अपनी सरकार की लारियाँ वहाँ भी पहुंच गई थीं और जिस तरह मक्खन में से बाल निकाला जाता है, बिल्कुल इसी तरह। उन्हें संगीनों के पहरे तले, सुरक्षा के साथ ले आई थी। अपनी सरकार के सिपाही स्वयं भूखों मरते रहे प्यासे मरते रहे—लेकिन वे उनके खाने के लिये कुछ न कुछ ले ही आते रहे—ट्रक किस तेज़ी के साथ जा रहे थे ? अपने देश की हवा कितनी पवित्र और निर्मिल थी ? वृक्ष जैसे उनका स्वागत कर रहे थे। और फिर उसने अपनी बच्चियों की तरफ देखा, जो अब उसके जीवन का सर्वस्व थी और जिन्हें उसने बेटों से भी बढ़ कर प्यार से पाला-पोसा था। उनके होते हुए, उनकी मां के बिना भी—" वह सोच रहा था—"सबर और सन्तोष करके जीवन के दिन काट लूगा !"—किस तरह से वह उन्हें पर्दों में छिपा २ कर ले आया था ? ये जवान, निष्कलंक गोरियाँ, जिन्हें उसने कभी बाहर की हवा तक न लगने दी थी और अब उनकी तरफ कोई आंख उठा कर नहीं देख सकेगा—

देवताओं के देश में। जहाँ चाहें, जाएं, जहां चाहें रहें, और जो जी में आए, करें।

और ट्रक शहर में पहुंच गया, अपने हिन्दुस्तान का पहला बड़ा शहर। गांधी-कैम्प में कोई जगह नहीं थी। पैन्तीस हज़ार शरणार्थी पहले ही वहां रह रहे थे—फिर ट्रक पटेल-कैम्प में पहुंचा। "नहीं"—यहां भी जगह नहीं थी। चालीस हज़ार के लगभग आदमी यहां भी ठहरे हुए थे। नेहरू-कैम्प भी भरा पड़ा था, बल्कि वहाँ से तो सुबह से कई ट्रक भर २ कर आगे लिये जा रहे थे। ट्रक वालों ने विनय की कि वे घड़ी भर सुस्ता लें—सुबह से वे ट्रक में बैठे हुए थे और अब शाम होने लगी थी। लेकिन कैम्प-कमाँडर की आज्ञा नहीं थी। गुरुद्वारे भर चुके थे, सराएं अटी हुई थीं—कहीं कोई जगह नहीं थी। किसी ने भी हां न भरी। और रात हो गई, घुप-अंधेरी रात! ड्राईवर सवारियों से लज्जित थे, सवारियां ड्राइवर से लज्जित थीं। आखिर एक सड़क—किनारे लारी का पेट्रोल खत्म हो गया

दूसरे दिन कड़कती, चिलचिलाती धूप में ट्रक उन्हें अगले से अगले शहर में ले आया—सफेद बालों वाले बूढ़े ने अपनी बाच्चयों को सभाला और एक खेमे में जा घुसा। उस शरणार्थी—कैम्प में उनके लिए जगह थी। बूढ़ा सोच रहा था—"मैं भी कहूं, अपनी सरकार यों हमें भुला तो नहीं सकती?"—और जस्सोवाल का चौधरी उसी झोंपड़ी पर ही राजी हो गया।

खेमे में सिरफ उतनी ही जगह थी, जिसमें एक बूढ़ा

और उसकी दो बेटियां लेट सकें और एक २ करवट ले सकें। और बस ! एक तरफ एक पत्थर पड़ा हुआ था एक कोने में लीद पड़ी हुई थी, और बाकी जगह पर घास ही घास थी। वह भी अब खुश्क होकर गल-सड़ रही थी। जस्सोवाल के चौधरी ने सन्तोष का सांस लिया।

"बेटी ! यह लीद बाहर निकाल कर फैंक देना। उसने लड़कियों से कहा और सोचा कि उस पत्थर को वह किसी वक्त स्वयं मिट्टी निकाल कर खींच लेगा।

नहाने के लिये कोई पर्दा नहीं था। जस्सोवाल के चौधरी और उसकी जवान बेटियों ने मुंह हाथ धोया, जिस तरह उन्होंने कल किया था, जिस तरह उन्होंने परसों किया था। उन्हें इतनी तेज भूख लगी हुई थी। कौन इतनी इन्तज़ार करता ? और फिर बैठे २ बड़ी लड़की; छोटी लड़की से बहसने लगी—"काट खाने को दौड़ी आती है। जब तुम्हारा पेट खाली हो"—छोटी ने शिकायत की।

इतने में खाने की घण्टी बजी, सारे ब्लाक में शोर मच गया। मर्द, औरतें, बूढ़े-बूढ़ियाँ और बच्चे, सभी कतारें बना कर बैठ गये। दूर पर—जहां तक उसकी नज़र कठिनता से जाती थी—बाँटने वालों ने बाँटना शुरू किया। जस्सोवाल के चौधरी ने सोचा—"आज कितने दिनों के बाद हम रोटी का मुंह देखेंगे ?" जब से वे गांव छोड़ कर निकले थे, सिरफ चने खा-खाकर उनके पेट भी फटने शुरू हो गए थे—या फिर भुनी हुई जुआर या कच्चा बाजरा या फिर भूख ! "आज" उसने सोचा—"अपने देश में रोटी खाएंगे। चाहे

दाल ही के साथ सही !" उसे लंगर की रोटी हमेशा अच्छी लगती थी। फिर उसने सोचा वह एक ही बार चार रोटियां ले लेगा। घड़ी २ कौन हाथ फैलाता रहे ? फिर उसने अपनी बच्चियों की ओर देखा—वे भूख की तेजी के कारण बेचैन हो रही थीं। एकाध पल गुजरा होगा कि एक आदमी बाएं हाथ से बांटते २ पहुंच गया।

"लो बाबा !" उसने हाथ फैलाए, लेकिन फौरन खींच लिये चने खा-खाकर तो वह तङ्ग आ चुका था ? वह तो रोटी की आशा पर आकर बैठा था ? लेकिन रोटी तो कहीं नहीं थी, दाईं ओर से भी चले आ रहे थे। चौधरी का मुंह खुले का खुला रह गया। वह कुछ बोलना चाहता था, लेकिन न जाने किस समय उसकी झोली फैली और बाँटने वाला आगे बढ़ गया। उसकी झोली में आज फिर चने पड़े हुए थे।

"आज आखिरी बार चने खाएंगे। बस, कल से रोटी मिलेगी।"—पड़ोसी शरणार्थी अपने बिसूरते हुए बच्चे को समझा रहा था। और जस्सोवाल का चौधरी सुन कर बाग २ हो गया। "तभी तो" उस ने सोचा—"मैं भी कहूँ-हमारी सरकार यूं तो कभी बेपरवाह नहीं हो सकती ?" —और वे तीनों अपने खेमे में जा घुसे। उसकी लड़कियों ने खीलें निकाल २ कर चौधरी को दीं चने चबाने के लिये उसके पास दांत कहां थे ? लेकिन खीलें तो उन चनों में बहुत थोड़ी थी ? और—आज फिर चौधरी ने पानी पीकर गुज़ारा कर लिया—

अगले दिन फिर चने बांटे गए। बूढ़े चौधरी ने सोचा —शायद अभी आटा नहीं पहुंच सका होगा। और आदम भी तो उस कैम्प मे कम नहीं थे? उसे याद आया—किस तरह अपने गांव में वह राह जाते मुसाफिरों को खाना खिलाने के लिये ले आता था। किस तरह आधा गाँव उस के घर से लस्सी पिया करता था? किस तरह अनाज से भरे हुए अनगिनत कोठे वह छोड़ कर आया था। उसकी गौएं कितना २ दूध देती थीं? और दूध-मक्खन से पली हुई उसकी बेटियां आज चने चबा रही थीं। लेकिन उसकी आंखों में आँसू न आए—

उससे अगले दिन फिर चने थे। जस्सोवाल के चौधरी ने सुना था कि सरकार पच्छमी पजाब से चालीस लाख हिन्दू-सिक्ख निकाल कर लाई थी। बूढ़े के अन्दर छिपे हुए साहूकार ने मोटा २ हिसाब लगाया, अगर बीस २ हज़ार के पांच कैम्प हर शहर मे बनाए जाएं तो भी चालीस शहरों की जरूरत थी। और गौरव—योग्य थी हमारी सरकार, जो इतना बड़ा प्रबन्ध कर रही थी। लेकिन फिर वह सोचता—सारा हिन्दुस्तान पड़ा था, बम्बई था, मद्रास था कलकत्ता था और वे तमाम लोग आज़ाद थे। अब वहां अंग्रेज़ तो नहीं था? जो उन्हें नोच २ कर खा रहा हो। अब हिन्दुस्तान आज़ाद था, क्यों कि उस जैसे चालीस लाख बर्बाद हो गए थे! हिन्दुस्तान आज़ाद था, क्योंकि पच्छमी पंजाब में उन्होंने छुरे खाने स्वीकार किये थे। हिन्दुस्तान आज़ाद था, क्योंकि आधे पंजाब ने अपना घर जलाकर

उन्हें आबाद करना स्वीकार किया था—

और वह सोचता—इस शहर के लोग कैसे हैं ? उस की कलियों जैसी कोमल बच्चियां चने चबा कर पेट भर रही थीं, लेकिन कोई आकर उन्हें रोटी के टुकड़े तक के लिये नहीं पूछता था। लेकिन उन जैसी लड़कियाँ तो पड़ोसी खेमों में भी थीं। जवान २ और छै, और दूसरे अगले खेमे में भी पाँच—और उससे अगले खेमे में भी। किस २ को पूछता कोई और किस २ को न पूछता ?

"आखिर कहाँ गया है ईश्वर ?" "वह चाहता क्या है ?"—अगले दिन फिर चने देख कर वह झुंझला उठा और गुस्से से लाल भबूका होकर वह कतार में से उठ आया। प्रतिदिन के सन्तोष से वह हार चुका था—"आखिर उससे कौनसा अपराध हुआ था ? बैठे २ मुसीबत सिर पर आन खड़ी हुई। इस से अच्छा तो हिन्दुस्तान आज़ाद ही न होता ?" वह सोचता और क्रोध की तेज़ी में कभी आंखें बन्द कर लेता, कभी खोल देता।

लेटे २ बूढ़े ने देखा—खेमे के कोने में सूखी हुई लीद ज्यों की त्यों पड़ी थी। पहले दिन की तरह जब वे यहां आए थे—वह क्रोध से जल-भुन उठा, लेकिन उसने स्वयं भी तो वह पत्थर नहीं निकाला था ? और फिर लड़कियां अभी बच्ची—बालाएं थीं ?—

बूढ़ा सोचता—वह कोई काम ही शुरु कर दे। शहर में किसी का मुन्शी-मुनीम ही बन जाए। प्रतिदिन वह सोचता—और प्रतिदिन वह टाल देता। कल सिलाई के महकमे

वाली उसकी बेटियों को बुलाने के लिये आई थी। लेकिन उन से करोशिये क्योंकर चलेंगे ? कब उन्होंने सूई को हाथ लगाया था ? और शहरों की ये औरतें—सुर्खी-सफेदी लगाने वालीं।—उनकी बातों में वह क्यों कर आ सकता था ?

फिर बूढ़े को लेटे २ याद आया कि लड़कियां अभी तक नहीं आईं, उठ कर वह खेमे से बाहर निकला। देखा—तो बड़ी लड़की चने बाँटने वालों में से एक बालंटियर के साथ हंस २ कर बातें कर रही थी। उसने कड़क कर आवाज़ दी—

"छोटी कहाँ है ?"—उसे और क्रोध बढ़ा—

और भीगी हुई बिल्ली की तरह छोटी लड़की सामने के खेमे से निकल आई।

"किसके साथ खेलें, किस के साथ हंसें—बोलें बेचारियां ?" फिर फौरन ही जैसे जस्सोवाल के चौधरी का क्रोध ठंडा पड़ गया। और दोनों को अपने परों में लपेटे वह अपने घोंसले में चले आया।

वह सोचता रहा—सोचता रहा। काश कि गत साल वह उन का ब्याह ही कर देता ! उनकी मां कितनी उत्सुक थी ? लेकिन उसने एक न सुनी। और आखिर-कार फिर धोखा खाया। लेकिन उस गांव का तो एक पंछी भी न बचा था, जब उनकी मंगनी हुई थी ? फिर उसे याद आया किस तरह उसके गांव की तमाम बच्चियों, जवान लड़कियों, अधेड़ औरतों को, गुण्डों ने अपने अधिकार में ले लिया था ? वृद्धियों के गंडासों से टुकड़े २ कर दिये। और किस कीमत

पर वह अपनी इन लड़कियों को बचा कर ले आया था—फिर उसे रास्ते का पड़ाव याद आया, जहां पर निगाह मैली होकर उन पर पड़ी थी। किस तरह वह कसमसाता रहा? खुशामदें करता रहा, जूतिया चाटता रहा। कई बार धक्के खाए, अपमान सहा और उसने सोचा—आखिर-कार वह उन्हें राक्षसों के पंजों से निष्कलंक छुड़ा कर ले आया। उसने अपनी पत्नी के टुकड़े २ होते देखे, लेकिन 'सी' तक न की। अपनी दोनों लड़कियों को बचा लाया था। आग में से, आंधी में से, तूफान में से—और उनको आंच तक न आई।

सोचते २ वह सो गया, कहीं शाम को जाकर उसकी आंख खुली! लड़कियां फिर खेमे में नहीं थीं।—"बाहर बैठी होंगी"—बूढ़े ने ख्याल किया। और फिर वह लेटा रहा—लेटा रहा। थोड़ा २ अंधेरा बढ़ने लगा—तो उसने लेटे २ आवाज दी—'बेटियो! कोई जवाब न आया। फिर उसने तेज़ २ आवाज दी—"ओ बेटियो।"

फिर भी कोई जवाब न आया—

फिर वह बाहर निकल आया—"कहां चलीं गई?" वह सोचने लगा—अचानक देखा—तो सामने वृक्ष के नीचे खड़ी हुई वे कुछ खा रही थीं।

एक रोटी—उन्हें उस आदमी ने दी थी और उन्होंने सोचा कि आधी आधी बांट कर खा लें और फिर एक तो बाबा सोया पड़ा था, दूसरे वह पूछता कहाँ से ली है? क्यों

ली है ? किसने दी है ? और इसके इलावा कितना । कुछ—?"

"बाबा ! चने खा रही थीं हम !" समीप आते हुए बड़ी लड़की ने झिझकते हुए कहा—

"अच्छा ?" बड़ी देर चुप रहने के बाद आखिर बूढ़ा बोला—और साथ ही एक ठण्डा गहरा सांस भरा—

"बाबा ! तेरा खयाल है रोटी मिलनी शुरु हो गई है अब ?" छोटी ने बाबा को बातों में लगाने की कोशिश की—लेकिन वह कुछ न बोला—

रात हो गई— फिर सुबह भी हो गई । फिर घण्टी बजी, फिर पंक्तियों पर पंक्तियाँ बैठ गई । न जाने क्यों, जस्सोवाल के चौधरी को यूं अनुभव होता था, जैसे आज उसे ज़रूर रोटी मिलेगी ? आखिर इतने दिन गुजर गए थे, क्या किसी ने भी महात्मा गांधी से जाकर नहीं कहा था कि यहां आदमी चने खाकर जा रहे हैं । उसे विश्वास न आता था, अखबार वाले उनके विषय में कितना कुछ तो लिख रहे थे ?

और दूर बहुत दूर बाँट शुरु हो गई थी—

उसकी सफेद दूधिया दाढ़ी आजकल बढ़ गई थी । सफेद दूध जैसे उसके बाल आजकल बिखर रहे थे और कभी कभी तो उसके चेहरे को देख कर यों जान पड़ता था । जैसे कोई ललकार रहा हो, जैसे कोई शरमा रहा हो, जैसे कोई किसी से कह रहा हो—मैं तो छीन कर भी खा लूंगा ।

चने खा-खाकर बाबा थक गया था। और फिर उसके दाँत नहीं थे कि वह उन्हें चबा सके। और खीलें तो जैसे बाँटने वाले पहले ही निकाल लेते थे। कहीं २ कोई २ खील दिखाई दे जाती। इन तीनों के हिस्सों की खीलें मिल-मिला कर कोई छटांक भर निकलतीं। और बाबा सोचता—कोई कब तक इस तरह पेट भर सकता है?

फिर वह सोचने लगता—वह ईश्वरके नाम पर लंगर लगवाया करता था, हर पूर्णमाशी को वह प्रसाद चढ़ाता था। गरीबों-भूखों को उसने कई बार कपड़े सिलवा दिये। विधवाश्रमों को कई बार उसने अनाज की बोरियां भेजी थीं। कभी झूठ नहीं बोला था। किसी मुसलमान के साथ उसकी शत्रुता नहीं थी। किसी हिन्दू के साथ उसे वैर नहीं था—फिर यह जुल्म क्यों? फिर यह सज़ा किस लिये?"

और बंटवारे समीप आ पहुंचे थे। आज भी उनके पास चने थे नियमानुकूल। काले २, अधभुने, अधकच्चे,—पत्थर की तरह सख्त—गीले २, बुझे २; हाथों पर पड़ते ही हाथ काले कर देते थे। झोली में पड़ते, तो झोली काली हो जाती। चने, जिन्हें जस्सोवाल का चौधरी आयु भर अपने पशुओं को डालता रहा था—

"वह नहीं लेगा – वह नहीं लेगा! वह नहीं लेगा!" और बांटने वाला उसके सिर पर पहुंच चुका था। पता नहीं, किस समय उसकी झोली फैली और मुट्ठी भर चनों से भर गई।

"नहीं लूंगा !"

"नहीं लूंगा !!"

"नहीं लूंगा !!!"

उसके अन्दर कोई विद्रोही चीख उठा। वह आज सुबह भर स्मरण करता रहा था। जब भी वह खेमे में अकेला होता, रो २ कर ईश्वर के सामने फरियाद करता था —ये चने तो उस की घोड़ी नहीं खाती थी और आज पन्द्रह दिन हो गए थे उसे चने खाते, सबर करते।

"नहीं खाऊंगा !"

"नहीं खाऊंगा !!"

"नहीं खाऊंगा !!!"

उसके अन्दर से फिर जैसे एक उबाल सा उठा और वह खड़ा हो गया। उसकी दृष्टियाँ आकाश की ओर जम गईं और उसने अपनी भुजाएं उठा कर ऊपर की तरफ अपनी झोली को उछालना शुरू कर दिया—

"तू खा ! तू खा !! तू खा !!!" कहता हुआ ऊंचीर आवाज़ में वह ईश्वर को सख्त नंगी २ गालियाँ निकाल रहा था—!

——:o:——

गौंस पीर के शहर में

"बाबा !"—बूढ़े टाँगे वाले को खड़ा करके मैंने सोचा कि पहले इसे समझा लूं—"बाबा ! बात दरअसल यह है कि हमें यहां पुलीस-स्टेशन में छोटा सा काम है, जहां दस-पन्द्रह मिनिट लग जाएंगे। इसके बाद हमें स्यालकोट की सैर करवा दो और फिर पिछले पहर हम वापिस लाहौर चले जाएंगे !"

"बहुत अच्छा" बूढ़े ने सिर हिला कर समझाते हुए कहा—

तो अब बाबा तुम हमें किसी ऐसे होटल में ले चलो जहाँ हम अपना सामान रख लें और हाथ मुंह धोकर नाश्ता कर लें !"

बूढ़े टांगे वाले ने ऋ मिनिट के लिये सोचा—एक नज़र मेरी ओर फिर मेरी साथिन की ओर देखा। फिर उसने गम्भीर दृष्टियाँ दाढ़ी वाला सिर हिलाया—"न बच्चो! तुम ऐसा न करो। यहाँ 'वेटिंग-रूम' में सामान रख कर नहा-धो लो। चाय पानी भी यहीं अच्छा मिलेगा। फिर अच्छी तरह तैयार होकर जहां तुम कहोगे, मैं तुम्हें ले चलूंगा!"

हम दोनों को टांगे वाले की राय बहुत पसन्द आई। हमने वेटिंग-रूम खुलवा कर उसमें अपना सामान रख लिया और अपने घर की तरह नहाए। अपने मतलब का आर्डर देकर चाय मंगवाई। इस दौरान में वेटिंग-रूम में मैं था या मेरी साथिन!

स्यालकोट चाहे "शहर" समझा जाता है, लेकिन कस्बे से बढ़ कर इसमें कोई बात नहीं। दस बजे के लगभग हम तैयार हो गए। मैंने सोचा - पुलिस-स्टेशन का दफ्तर भी अब तक खुल चुका होगा। बाहिर टांगे वाला बैंच पर बैठा हमारा इन्तज़ार कर रहा था। प्लेट-फारम से बाहर आकर हमने देखा कि उसका टांगा दर्म्यांने से दर्जे का है। घोड़ी बूढ़ी और दुबली सी ...

"बाबा जी! क्या तुम्हारा टांगा सारा दिन चल सकेगा!" टाँगे में बैठते हुए मेरी साथिन ने पूछा—"बेटा! अल्ला का नाम लेकर बैठ जाओ। फिर जो ख़ुदा को मंज़ूर।" यह कह कर टांगे वाले ने घोड़ी को चला दिया।

स्टेशन से निकल कर हमारा टाँगा सड़क पर चल पड़ा। कुछ देर के बाद सब्ज़ी-मण्डी आ गई। सब्ज़ियों से

भरे हुए छकड़े आ-जा रहे थे। फिर हमारा टांगा घूमा और एक चढ़ाई पर चढ़ना शुरू हो गया।

"बाबा! हम किधर जा रहे हैं?" मैंने पूछा—

"हैं?" बूढ़ा टांगे वाला चौंक पड़ा—"बेटा! तुमने कहा था न कि कोतवाली जाना है।"

फिर हमारा टांगा ऊपर चढ़ता गया—चढ़ता गया! किले के ठीक ऊपर कोतवाली थी, जिस सामने स्यालकोट टाऊन-हाल है और चारों ओर शहर फैला हुआ है। कोतवाली के अहाते से बाहर ही बूढ़े टाँगे वाले ने घोड़ी को रोक लिया—

मैंने कहा—"बाबा! अन्दर ले चलो!"

"न बेटा!" जैसे हैरान होकर उसने मुझे कहा—

मैंने बूढ़े टांगे वाले के उस छोटे से इन्कार पर ज्यादा सोचने की कोशिश न की। मैं टाँगे से उतरा मेरे साथ मेरी साथिन भी उतरी। हमने अपने अखबार और रसाले टांगे में ही रहने दिये। अन्दर जाने के लिये कदम उठाया ही था कि टांगे वाले ने हमें रोक लिया—

"बेटा! यह क्या? कभी लड़कियां भी इस चार-दीवारी के अन्दर गई हैं? इसी लिये तो मैंने टाँगा बाहर खड़ा किया है?"

"नहीं बाबा जी! कोई बात नहीं! इतना भी डर क्या?" मेरी साथिन ने कहा और मेरे साथ चलने के लिये आगे बढ़ी—

"न बेटा ! यह तो मैं कभी नहीं होने दूंगा, तोबा इस्तफा !" और फिर उसने अरबी में कुछ पढ़ा—

मैं हंस पड़ा मेरी साथिन भी हंस पड़ी और हमने अंग्रेज़ी में निश्चय कर लिया कि मैं अकेला ही अन्दर हो आऊं।

मैं ज्यादा देर अन्दर न रहा। जिस आदमी ने मुझे बुलाया था—पता चला कि एक डेढ़ घण्टे तक दफ्तर आएगा। इन्तज़ार करना हमने उचित न समझा, और सोचा कि इतने समय में स्यालकोट की किसी प्रसिद्ध जगह ही देख आएं।

जिस समय टांगा कोतवाली की ढलान से नीचे उतर रहा था, मेरी साथिन ने मुझे अंग्रेज़ी में बताया कि बूढ़ा टांगे वाला उसी शहर का रहने वाला है। और यहाँ के कोने २ का परिचित नज़र आता है। एकाध दिन में हमें सब सब जगहों की सैर करवा देगा।

"क्यों बाबा ! 'हमज़ा गौन्स' का किस्सा तुझे मालूम है ?"

बूढ़ा टांगे वाला चुप रहा, जैसे उसने सुना ही न हो। मैंने ज़रा उठ के देखा, तो उस के होंठ हिल रहे थे, जैसे वह होंटों के बीचों बीच कुछ पढ़ रहा हो।

"बाबा जी ! हमें हमज़ा गौन्स के मकबरे में ले चलो !" मेरी साथिन ने फिर कहा—

इस बार बूढ़े टांगे वाले ने सिर हिला दिया, लेकिन उसके होंठ अभी तक कुछ पढ़ रहे थे। साधारण टांगे वालों

तरह वह अपनी घोड़ी को हूं-हाँ करके न चलाता था और न उसे मासूम सी गालियाँ देता था, जैसे—"आ, तेरे मालिक को चोर ले जाएं—ओ, तुझे साँप खा गया।—क्या हो गया ?"—और न ही वह उसे डराने के लिए चाबुक से काम लेता। उसके पास चाबुक था ही नहीं ?

स्यालकोट के जिन बाज़ारों और सड़कों से हम गुज़रे, वह काफी वीरानक और बीरान से थे। टांगे वाला बड़ी सावधानी से टांगा चला रहा था, जैसे उसकी यह कोशिश हो कि हमें हिचकोलों से बचाता जाए।

हम एक और ढलान से उतरे, फिर एक मोड़ मुड़ कर पुल पर से गुज़रे—कुछ खेत आए, जैसे शहर खतम हो रहा हो। और फिर हम हमज़ा गौन्स के मकबरे तक पहुंच गए। उस मकबरे के बिलकुल पास ही वेरी साहब' का गुरुद्वारा है, जिसके घेरे में शहरी की समाधियां हैं। एक तालाब है, तीन-चार वहट हैं, आमों के घने पेड़ हैं, जिनकी छाया में कई लोग बैठे हुए थे, लेटे हुए थे, पढ़ रहे थे—खेल रहे थे और सो रहे थे।

पहले मैं वेरी साहब के गुरुद्वारे के अन्दर गया। वहां एक बहुत बड़ी शिला के ऊपर गुरू नानक और पीर हमज़ा गौन्स के मिलाप का हाल लिखा हुआ था।

पीर हमज़ा अपने समय का माना हुआ फकीर था। जो कोई उसके दरबार में अपनी इच्छा लेकर जाता, पूरी हो जाती। इस जगह से कभी कोई खाली हाथ नहीं लौटा था। एक बार एक औरत पीर जी के दरबार में उपस्थित हुई और

गिड़ गिड़ा कर फरियाद की कि उसके घर सन्तान नहीं होती। पीर साहब पसीजे और कहा—"तेरे घर दो बच्चे होंगे एक को अपने पास रख लेना और दूसरे को हमारे दरबार में सेवा के लिये भेज देना!"—

औरत ने प्रण किया और लाख २ शुकर मना कर घर वापस आई। बहुत दिन नहीं गुजरे थे कि पीर जी के वरदान के अनुसार इस औरत के घर बच्चों का जोड़ा पैदा हुआ। इस तरह कहानी आगे चलती थी—

देख-सुन कर जब हम गुरुद्वारे से बाहर निकले, तो बूढ़ा टाँगे वाला हमें हमजा गौन्स के मकबरे में ले गया। एक पुराना मज़ार (समाधि) था, जिसकी छत आज तक टूटी हुई है। आस-पास लहलहाते खेत हैं, साथ ही रहट चल रहा है। मन्दिर को देख कर हम बाहर कुएं के पानी से खेलने लगे। कितनी देर तक हम रहट को चलता हुआ देखते रहे, एक दूसरे पर छींटे डालते रहे, आँख-मिचौनी खेलते रहे—छिपते रहे ढूंढते रहे। बाद में हम साथ के खेतों में चले गए। हमने कुछ ककड़ियाँ खरीदीं, खीरे खाए और खरबूजे खरीद कर वापस आए। बूढ़ा टाँगे वाला अभी मजार के अन्दर था। हमारे पास इतना बोझ था कि हमने सोचा—इसमें से खाके कुछ हल्का किया जाए—काफी देर के बाद बूढ़ा टाँगे वाला बाहर आया—उस की आँखें लाल थीं। उसकी दूध जैसी सफेद दाढ़ी पर आँसू झिलमिला रहे थे। साफे के एक किनारे से वह अपनी आँखें और दाढ़ी को साफ कर रहा था। मज़ार से निकल कर एक बार फिर

चारदीवारी से माथा रगड़ा और कितनी देर तक नाक से लकीरें निकालता रहा।

हम बगैर छीले और काटे पूरे का पूरा खीरा खा रहे थे। ये बूढ़ा टांगे वाला हमारे पास आ गया।—"न बच्चो! तोबा इस्तफा यह क्या कर रहे हो?" एक दम वह घबरा सा गया। उसने हमसे खीरे लेकर फैंक दिये, ककड़ियां ज़मींदार को वापस कर दीं और खरबूजे उठा कर टाँगे में रख लिये। बूढ़ा टाँगे वाला सारे का सारा समय मौन रहा, हल्का-फुल्का सा! उसकी आखें अधखुली सी थीं, जैसे वह एक मस्ती में झूम रहा हो।

"तुम जैसे नाजुक बच्चों को ये ककड़ियाँ और खीरे कैसे पच सकते हैं? और फिर तुमने इन्हें छीला भी नहीं, तुम्हारे पास नमक भी नहीं है!" टांगा चलाते समय बूढ़े टांगे वाले ने एक गम्भीर बज़ुर्ग के अन्दाज़ से कहा—

टांगा चल पड़ा और कदम कदम पर बूढ़ा हमें छोटी-छोटी बातें सुनाता रहा, हमारी भी—"बाबा जी!—बाबा जी!" कहते ज़बान नहीं थकती थी—

"यह लड़कों का स्कूल है,—और जो यहां से पास हो जाते हैं, —यहां आकर पढ़ते हैं!" ज़रा आगे जाकर कालिज की ओर इशारा करते हुए बताया—

"यह भैरों का मन्दिर है।"

"किसका बाबाजी?" मेरी साथिन ने सुना नहीं था—

"भैरों का बेटी! हिन्दू-औरतें यहाँ आकर मुरादें

मांगती हैं और अगर उनके घर औलाद न होती हो, तो ज़रूर बच्चा पैदा हो जाता है।"

"यह यतीमखाना है।" टांगा उड़ता जा रहा था—माँ-बाप से बिछुड़े बच्चे यहां रहते भी हैं और पढ़ते हैं।"

"यह कूड़ी-बाग है!" पुल पार करके हम शहर के पास पहुंच रहे थे—"कहते हैं कि एक कुंवारी लड़की को यहां के एक राजे ने जिन्दा उस जगह गाड़ दिया था। तभी तो यह शहर नामुराद है, नहीं तो यह शहर भला-चंगा था। पूर्ण भक्त जैसे महापुरुष यहां पैदा हुए। बददुआ लगी इस शहर को बच्चों की बददुआ।"

शहर में दाखिल होते ही मिट्टी के बर्तनों और खिलौनों की दुकान आई। मेरी साथिन ने टांगा ठहराने के लिये कहा। बूढ़ा टांगे वाला भी अपनी घोड़ी को थाप-थपक कर हमारे साथ दुकान की ओर आ गया। अपने दृढ़-विचारों और अनुभवों से अच्छी तरह देख-भाल कर हमें सब चीज़ों का चुनाव कर दिया। लड़-झगड़ कर कम से कम पैसे दिलवाए। और जब हम टांगे में आकर बैठे, तो वह एक बार फिर दुकान की ओर चला गया। जब वह वापस आया—नन्हें-मुन्ने रंग-बिरंगे खिलौने थे, एक छोटी सी गागर, एक छोटा सा तवा, एक चक्की—एक चकला एक बेलना—ऐसे और कितने ही खिलौने हमें आकर दिये।

मैंने अपनी साथिन से अंग्रेजी में पूछा—क्या उसने बूढ़े टांगे वाले को बताया था कि उसकी एक बच्ची?

'नहीं ! इसका जिक्र बिल्कुल नहीं आया !"

हमने खैर इसका कोई खास ख्याल न किया। यह सोचकर चुप रहा कि एक ची जो हम भूल रहे थे—अच्छा हुआ कि टांगे वाले ने याद करवा दी।

टाँगा फिर चल पड़ा। फिर सब्ज-मण्डी से गुज़रा। फिर किले जैसी चढ़ाई पर चढ़ा। फिर कोतवाली के बाहर दरवाज़े पर रुक गया। फिर मैं अकेला उतरा और तेज़ २ कदम भरते हुए अन्दर चला गया और मेरी साथिन बाहर टाँगे में ही थी।

लगभग आध घण्टा मैं अन्दर लगा कर बाहर आया और धीरे से अपनी साथिन को बताया कि वे लोग यूं ही टालमटोल कर रहे थे। उनका मतलब था कि उन्हें रिश्वत दी जावे। मेरी साथिन के सिद्धान्त कुछ कठोर से थे। हम सोच ही रहे थे कि बूढ़ा टांगे वाला कड़क उठा—"पैसा नहीं, मुअर दूंगा इसके मुह में। चल बेटा मेरे साथ। मैं एक क्षण में सारा काम करवा दूंगा।"

बूढ़ा टांगे वाला मेरे साथ अन्दर चला गया। उसके गांव का एक आदमी वहां नौकर था। उसे साथ लेकर हमने पाँच मिनिट में सारा काम करवा लिया। और फिर हम वापस आ गए—

टांगा अभी मुड़ा ही था कि एक दम घोड़ी को बूढ़े टाँगे वाले ने रोक लिया और आंख झपकने की देर में बिजली की तेज़ी के साथ वह कड़कता-चिंघाड़ता हुआ आम के बूटे के नीचे खड़े हुए नौजवान पर टूट पड़ा और हमारे

देखते ही देखते उसे मार-पीट कर वापस आ गया। हम हैरान थे कि इसे क्या हो गया ?

मेरी साथिन ने मुझे बताया कि यह लड़का कितनी देर से टांगे के आगे-पीछे फिर रहा था, जिसकी उसने कोई परवाह न की। फिर बूढ़े टांगे वाले ने हमें बताया कि जिस वक्त टांगा चलने लगा था, तो उस समय पान खाते हुए बदमाश ने कोई बेशर्मी की कोई बात कही थी।

"ऐसे आदमियों की बेशर्मी ! पहले हाथ ही मुरम्मत कर देनी चाहिये !" बूढ़े टांगे वाले ने मेरी साथिन को समझाया।

"ठीक है बाबा जी ! लेकिन आदमी किस २ से लड़े ?" इस छोटे से जवाब से मेरी साथिन ने हमारे समाज का पूरा २ नकशा खींच दिया।

"हाँ बेटी ! तू भी सच कहती है।" किस तरह बोलते २ बूढ़े टाँगे वाले को रोना सा आ गया हो। कुछ देर मैंने देखा कि उसके होंठ फिर हिल रहे हैं, जैसे उसने फिर कुछ पढ़ना शुरू कर दिया हो !

कोतवाली की ढलान से उतर कर बूढ़ा टाँगे के साथ हमें बाजार में ले गया, जहां हमें खेलने का कुछ सामान खरीदना था। क्योंकि हमारा यह ख्याल था कि स्यालकोट में बहुत बड़े कारखाने होंगे। बूढ़े ने बताया कि गलत है, यहाँ हर घर में कोई न कोई चीज बनती है और फिर बड़ा २ दुकानों द्वारा बाहर भेज दी जाती हैं।

हमें कुछ बैडमिंटन की चिड़ियां, कुछ बल्ले और कुछ इस तरह का छोटा-छोटा सामान खरीदना था। बूढ़े टांगे वाले ने हमें अपने एक परिचित दुकानदार से बहुत ही सस्ते भाव सामान लेकर पूरा टांगा भर दिया। बड़ी मुश्किल से हमने उसमें आधा रखवाया और बाकी आधा वापस कर दिया।

इस दौरान में एक बज गया—"क्यों बच्चो? तुम्हें अब भूख लग गई होगी?" बूढ़े टांगे वाले ने हमें पूछा—

"नहीं बाबा जी! हमें थोड़ा सा शहर और दिखा दो। फिर हम वापस चलेंगे।"

"अच्छा—बहुत अच्छा!"

जिस तरह मेरी साथिन ने बूढ़े के दिल की बात कह दी हो, वह खुशी से फूल सा गया—

छोटे २ बाजार और सड़कें घूमता हुआ टाँगा चलता गया—चलता गया। और बूढ़ा टांगे वाला हमें अपने शहर की छोटी २ बातें सुनाता रहा। कुछ देर के बाद हमने देखा कि घोड़ी की रफ्तार जरा धीमी हो रही है और टांगे वाला खामोश होता जा रहा है और फिर एक जगह आकर घोड़ी ठहर गई।

बूढ़े टांगे वाले ने एक नज़र हमारी ओर देखा। फिर टांगे से नीचे उतर आया और उसने फिर एक बार सड़क पर खड़े होकर हमारी ओर देखा। जिस तरह कि वह कुछ कहने के लिए झिझक रहा हो। हम भी चुप थे और वह

भी चुप था। आखिरकर उसने कहा—"बच्चो मैं अभी आया !"

कोई दस मिनिट के बाद बूढ़ा टाँगे वाला वापस आया। हमने सोचा कि वह खाना खाने गया था, तभी इतना डर रहा था—लज्जित हो रहा था। इस बार एक छोटी सी गठरी वह अपने साथ ले आया। जिसे अपने पास रखकर स्टेशन की ओर चल पड़ा।

स्टेशन पर पहुंच कर हमने खाने के लिए आर्डर दिया। इतने में बूढ़ा टाँगे वाला हमारा सामान वेटिंग-रूम में ला-लाकर रखता रहा। जब सामान आ गया, तो उसने बाहर सब्ज़ी वाले से एक टोकरी लेकर बहुत सावधानी और ढङ्ग से हमारी छोटी २ चीज़ों को संभालना शुरू कर दिया। इतनी देर में हमारा खाना आ गया। हमने देखा कि कुछ देर बाद सामने बाज़ार से लस्सी के दो गिलास पकड़े बूढ़ा टाँगे वाला आ रहा था। खाना खाके हम दोनों ने अंग्रेज़ी में टांगे वाले का हिसाब किया, और मेरी साथिन ने दस रुपये निकाल कर बूढ़े टांगे वाले का दिल रखते हुए कहा—"बाबा जी ! तुम्हारा बहुत २ शुक्रिया।"

"हां बाबा ! तुम्हारा बहुत २ शुक्रिया।" मैंने भी बूढ़े का मीठा कर्ज उतारने की कोशिश की—

बूढ़ा टांगे वाला जहाँ खड़ा था, वहीं जम गया। एक क्षण के लिये जिस तरह वह वेसुध सा हो गया हो ! फिर उसकी आँखों से आंसुओं का एक चश्मा सा बह

निकला। फूट २ कर वह रोने लगा और आगे बढ़ कर उसने हम दोनों को अपनी बाहों में पकड़ लिया।

मुझे यों नामुराद करके न जाओ! अभी तो मैं आज ही पीर गौन्स के मकबरे से लकीरें खींचता आ रहा हूँ। और बूढ़ा टाँगे वाला हमें गले लगा कर रोता रहा—रोता रहा।

फूट २ कर उसने बताया कि उसका कोई बच्चा नहीं वह और उसकी बीबी—दो ऐसे वीरान वृक्ष हैं, जो कभी कोई पत्ता पैदा नहीं कर सके। आज इस बूढ़े की दुनिया में हम दोनों पंछियों की तरह आकर बैठ गए और सारा दिन वह हमें इस तरह लिये फिरता रहा। जैसे हम उसके खून का खून हों। जब वह हमें 'बच्चे' कह कर पुकारता था, तो उसकी छाती-तले एक बाप का लहू छलकता था। सारा दिन वह एक स्वप्न सा देखता रहा और अब किस तरह हमने उसके कल्पित-महल को बर्बाद कर दिया हो।

"मैं टाँगे को अपने घर की ओर ले गया था। लेकिन मेरा दिल न चाहा कि तुम्हें अपने घर चलने के लिये कहता। मेरी बीबी की गोदी हमेशा सूनी रही है। एक घड़ी के लिये वह भी सुख देख लेती, जो मैंने आज देखा है! हमारा गौन्स पीर! तेरा लाख २ शुकर!!" इस तरह दुआएं माँगता बूढ़ा टाँगे वाला कुर्सी पर बैठ गया।

हमारी गाड़ी बाहर आ चुकी थी। बूढ़े टाँगे वाले ने हमारा सामान रखवाया और गाड़ी के चलने से पहले,

वह छोटी सी गठरी, जो वह उठाए फिरता था, हमें देख पीछे हट गया। गाड़ी स्टेशन से चल दी। प्लेट.फार्म से निकल कर हमने उसकी गठरी खोली। उसमें मक्की का आटा था, माखन का एक लड्डू था और पनीर था।

मैंने अपनी साथिन की ओर देखा। मेरी साथिन ने मेरी ओर।—

हम दोनों की आंखें आंसुओं में छलक रही थीं।

——:o:——

समतल होने से पहले

यह ज़िकर मैं अपने गांव का नहीं, अपनी बहिन के गांव का कर रहा हूँ। हमारे गांव को दूसरी तरह जलाया गया था।

यों मालूम होता है, जैसे हमारे प्रदेश को जलाते २ फिसादी पांचवें दिन वहां पहुंचे। मेरी बहिन पूजा-पाठ के लिये प्रातः काल ही उठ बैठती थी और उनके साथ मेरे बहनोई भी—

और उस दिन जब वे नियमानुसार उठे—तो उनका कहना है कि गाँव से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर ढोल बज रहा था—

उन्हें पता चल गया कि आज हमारी बारी भी आ गई है और देखते ही देखते गांव भर में कोलाहल मच गया—

गाँव के लोग पहले मेरे बहनोई के घर की ओर दौड़े ये गाँव के चौधरी थे। और फिर कई एक उन मुसलमानों की ओर भाग गए, जिन्होंने तमल्लियाँ देकर उन्हें रोक रखा था। गाँव का नंबरदार भी मुसलमान था—

ज्यों ही नम्बरदार ने गाँव पर हमले की खबर सुनी वह क्रोधित होकर तिलमिला उठा। उसने पिस्तौल पकड़ा, घोड़े पर काठी डाली और जिस ओर से ढोल पीटने की आवाज़ आ रही थी उस तरफ घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ चल पड़ा।

गाँव वालों ने ऊंची २ मुडेरों पर चढ़ कर देखा। 'कस्सी' (देहाती नाला) के उस पार सैंकड़ों 'छवियां' चमक रही थीं, सैंकड़ों घोड़े बफर रहे थे, सैंकड़ों नेज़े उछल रहे थे, सैंकड़ों हाथ दुआ के लिये उठे हुए थे--सैंकड़ों सिर सिज्दे में झुके हुए थे। सेहरे बांधे जा रहे थे, हार पहने जा रहे थे, झंडे को अभिवादन किया जा रहा था—ढोल अब भी बज रहा था और फिसादियों के झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे हो रहे थे।—

सेना की सी तैयारी देख कर गाँव वालों ने अनुभव किया कि गाँव के नम्बरदार से कुछ नहीं हो सकेगा—दूसरे देहात के नम्बरदारों से भी कुछ नहीं हो सका था।—

और गाँव के ये लोग पुरुष-नारियां, बच्चे-बूढ़े, सभी एक गुरुद्वारे में जमा हो गए। लगभग दो घण्टे बाद नम्बरदार लौटा, उसके चेहरे से निराशा बरस रही थी। उस

के मुंह में जैसे ज़बान नहीं थी। बड़ी कठिनता से उसने कहा—

"मेरे भाइयो ! कुरान-शरीफ में लिखा है कि कयामत आएगी और यह दुनिया खतम हो जाएगी।—और वह दिन आज आ पहुंचा है। लेकिन आज—पहले मैं मरूंगा, पहले मेरी बीबी मरेगी, पहले मेरे बच्चों को कतल किया जाएगा—और फिर तुम्हारी तरफ कोई आंख उठा कर देख सकेगा—" इतना कहने के बाद नम्बरदार का गला रूंध गया। उससे आगे न बोला जा सका—

नारियाँ रो रहीं थीं, शिशु बिलख रहे थे—गुरुद्वारे की एक २ शिला पर मस्तक निवाए जा रहे थे, हाथ जोड़े जा रहे थे, पाठ हो रहे थे—

निदान नम्बरदार ने उनसे बन्दूकें लेकर एक जगह जमा कीं, कारतूस इकट्ठे किये। अपने घर जाकर अपनी बीबी के आभूषण उतार लाया और फिर प्रत्येक सिक्ख और हिन्दू नारी के बाजू और कान सूने कर दिये। वह दहाड़ें मार २ कर रोए भी जाता था और आभूषण भी जमा किये जाता था। ज़ेवरों से एक बोरी भरके और बन्दूकें बांध कर उसने घोड़े पर लाद लीं—

"सूअरों के मुंह में हड्डी देकर देखता हूं !" आखिर उसने तड़प कर कहा और चला गया। फिसादियों ने कहा था कि अगर एक लाख रुपया और गांव भर की बन्दूकें तथा कारतूस उन्हें दे दिए जाएं, तो वे आगे बढ़ जाएंगे।—

पाठ होते रहे मन्नतें मानी जाती रहीं, अपराध क्षमा करवाए जाते रहे—न कोई खा सका, न पी सका। पुरुष स्त्रियों की ओर न देख सकते थे, नारियाँ शिशुओं से लज्जित थीं। नव-विवाहिताओं के कंगन अभी मैले नहीं थे–बालाओं की केशराशि अभी गूंथी नहीं गई थी बड़ी-बूढ़ियों के रूखे सफेद बाल बिखरे हुए थे। एक ने पाई इकट्ठी करके सबों ने दे दी थी, लेकिन सामने ढोल अभी तक बज रहा था, नारे उसी तरह लगाए जा रहे थे और हर नारे पर दम से औरतों को गश पर गश आ रहे थे।

नारे बुलन्द होते गए। नम्बरदार को गए हुए एक घण्टा हो गया था, लेकिन नारे फिर भी लग रहे थे। सेहरे बांधे जा रहे थे, हार पहनाए जा रहे थे, 'पानी वारा'* जा रहा था—

......और फिर घोड़े चले, छवियाँ चलीं, नेज़े चले और उनकी रोशनी से जलाई हुई मसालें चलीं—

छातियों पर हाथ रख कर मर्द देख रहे थे, अधरों में आंचल के छोर दबा कर नारियाँ देख रही थीं, शिशु चीख रहे थे—जैसे सामने अटल-मौत आ रही हो।

कइयों को अभी तक आशा थी कि फिसादी 'कस्सी' (नाला) पार कर मुड़ना नई पगडंडी पर हो लेंगे। कई एक अभी तक यह भरोसा किये बैठे थे कि उनकी कँवारि बेटियों के नाक में से उतरी हुई नत्थें बेकार नहीं जाएंगी। कइयों

* प्रथानुसार एक पंजाबी मुहावरा।

को अभी तक विश्वास था कि निहत्था करके कोई भी किसी को मारा नहीं करता—

लेकिन 'कस्सी' पार कर ली गई, पगडंडी उलाँघ ली गई, जो दूसरे गाँव की ओर जाती थी और घोड़े वग़ैर किसी रोक के चले आ रहे थे, घोड़ों पर बैठे हुए सवार बिना किसी झिझक के गांव की तरफ देख रहे थे। गांव की तीन तीन मंज़िल ऊंची 'ममटियों' की तरफ;—छवियां जैसे उन गर्दनों की प्रतीक्षा कर रही थीं,—जिन्हें उतारा जाना था। नेजे जैसे अकड़ रहे थे ऐंठ रहे थे। ढोल बज रहा था, शहनाइयां बज रही थीं। अनगिनत ध्वजाएं लहरा रही थीं, जिनमें अनगिनत चांद-सितारे चमक रहे थे; अनगिनत नारे लगाए जा रहे थे, जिनमें अनगिनत बार 'अल्ला' का नाम शामिल होता था—

—और फिसादी आ रहे थे—जैसे वे नहीं टलेंगे नहीं मुड़ेंगे, नहीं हटेंगे। जैसे कोई तूफान आता है, जैसे कोई आंधी आती है, जैसे कोई दरया चढ़ रहा हो—फिसादी आ रहे थे। प्रत्येक लोचन में खून था, प्रत्येक दृष्टि में पाशविकता थी, प्रत्येक हाथ को जैसे चाट लगी हुई थी—नारियों की, शिशुओं की, बूढ़ों की, युवकों की—फिसादी आ रहे थे। जैसे आंगन उनकी प्रतीक्षा कर रहे हों जैसे दीवारें उन के सामने लेट जाएंगी, जैसे छतें उनके सामने बिछ जाएंगी। फिसादी आ रहे थे—उन्हें वस्त्रों की आवश्यकता थी, उन्हें सन्दूकों की आवश्यकता थी, फिसादी आ रहे थे—उन्हें नारियों की ज़रूरत थी, गायों और घोड़ियों की ज़रूरत थी,

फिसादी आ रहे थे—आज फिर सरिताएं बहेंगी खून की, आज फिर शिशुओं को उछाला जाएगा नेज़ों पर, आज फिर नग्न किये जाएंगे नारियों के अवगुण्ठन, फिसादी आ रहे थे, वे पहुंच चुके थे गांव के मकानों के समीप; एक हाहाकार मच गया। माताएं, बेटियों के कण्ठ लगा २ कर विलाप करने लगी; बाप, बेटों के कन्धों पर सिर रख कर दहाड़ें मारने लगे। वे एक घर भी नहीं छोड़ेंगे, एक भी शिशु नहीं छोड़ेंगे और स्त्रियों को वे साथ ले जाएंगे। जैसे वे पहले भी करते रहे थे, जैसे प्रत्येक गांव में होता रहा था—

निदान इस चीख-चिल्लाहट में से एक आवाज़ उठी, यह आवाज़ मेरे बहनोई की थी—

"मेरे भाइयो और मेरी बहिनों! मौत सामने मुंह बाए खड़ी है, फिर इस मौत से क्या डरना!"

और फिर उन्होंने पांच सौ पुरुष, स्त्रियों और शिशुओं को मरने का ढङ्ग बताया, जिनमें उनकी अपनी स्त्री थी, अपनी माता थी, अपना पिता था और एक स्वप्न भी था, जो उनकी स्त्री की कोख में लेटा हुआ था। अन्त में उन्होंने सब को अपनी विवशता का अनुभव कराया, अपनी दुर्बलता का, निहत्थेपन का—"कायरों और नामर्दों की मौत से कोई न मरे!" उन्होंने गरज कर कहा—

गांव के बाहरी-भाग के मकानों से धूएं की रेखाएं उभरनी आरम्भ हुईं। द्वार खुले हुए थे, रसोइयों में दूध पक रहा था बंधा-बंधाया सामान सामने पड़ा था। एक २ वस्तु उठा कर फिसादी ऊंटों पर लादते जाते। छकड़ों को भरते

जाते और उनके लिये ट्रक आ गए।—और जब मकान सामान से खाली हो जाते, तो तेल छिड़क कर मकानों की पंक्तियों पर पंक्तियां भस्म कर देते। तीन २ मंज़िले मकान जलते रहे, जलते रहे, शेरों की तरह दहाड़ती हुई दुकानें लुटती रहीं, मन्दिरों के कलश गिरते हुए उनके पुजारियों ने देखे; गुरुद्वारों के गुम्बद गिरते हुए गुरू के प्यारों ने देखे—

और यों दोपहर हो गई—

मिनिट २ बाद 'अल्ला हो अकबर' के नार लगाते थे। ढोल अब भी पीटे जा रहे थे। एक जोश था, एक लग्न थी, एक तेज़ी थी—एक भूख थी—जो यों अनुभव होता था:—कभी मिट न सकेगा—

दोपहर हो गई, दोपहर टल गई। साझ हो गई और फिर कहीं जाकर लूट खसोट समाप्त हुई;—अब मारधाड़ का समय था। रात के सुखद अन्धेर में, जब पड़ोसी को पड़ोसी का मुह दिखाइ न द सके; कहीं कोइ 'छवी' इन्कार न कर दे अपनी जानी-पहचानी गदन को काटने के लिये, कहीं कोई नेज़ा मुह न फेर ले किसी बच्चे की मुस्कान देख कर, और नारी की काया तो अंधेरे में कुन्दनमय बन जाती है।

जब पहली बन्दूक की गोली उनकी ओर चली, तो तलवारें पकड़े पाच व्यक्ति बाहर निकले॥ तय यह पाया था कि पाच २ व्यक्ति बाहर जायेंगे। शायद उनका विचार उस खूनी होली को तूल देने का था। तनिक दूर—अर्थात् पाँच मील पर थाना था, जहा चोरों, डाकुओं और गुण्डों को

सज़ा दी जाती थी। कोई पन्द्रह मील पर कचहरियां खुली हुई थीं—अपीलें सुनी जा रही थीं, न्याय किये जा रहे थे। देहली में अब भी सरकार बैठी हुई थी, जिसके पास जहाज थे, बम थे, मशीनगनें थीं।

पांच २ की टोलियां मरती रहीं, मरती रहीं। कोई गोलियों से उड़ाई जाती, कोई नेज़ों में छेदी जाती और कोई छुरियों और लाठियों पर आज़माई जाती।

पाँच २ की टोलियों को मरते २ आधी रात हो गई और आखिर जैसे झुंझला कर फिसादियों ने एक साथ ही हमला कर दिया। 'अल्ला हो अकबर' के नारों ने आकाश को कंपा दिया था, शिशुओं के क्रन्दन ने धरती को हिला दिया था। लेकिन कोई मर्द 'हाय' नहीं कर रहा था, कोई औरत 'हू-हू' नहीं कर रही थी। खून के फव्वारे छूट रहे थे, लाशों को घसीटा जा रहा था। मर्दों को मारा जा रहा था। अहाते के अन्दर और बाहर एक २ मर्द लड़ा, एक २ युवक ने सौ २ घाव सहे—तब कहीं जाकर ये लोग मर सके, तब कहीं समाप्त हो सके वे लोग—जिन्होंने मरने का निश्चय कर रक्खा था।

और अब बच्चों की बारी थी और फिर औरतों की—और अभी तो आधी रात शेष थी?—बच्चे ऊपर थे, स्त्रियां ऊपर थीं और रुधिर में नहाए हुए फिसादी 'हफ २' करते सीढ़ियों पर चढ़ गए, चढ़ते गए, चढ़ते गए। वे और भी ऊपर थे, ऊपर के चौबारे पर, शायद छत पर हों! फुंकारते, गरजते, ललकारते वे छत पर जा पहुंचे।

यहाँ बच्चे मौजूद थे—

और वे हक्के-बक्के होकर, स्तम्भित से जैसे पत्थर बन गए हों। सब से बड़े गुरुद्वारे की सब से बड़ी छत लदी हुई थी, निरीह शिशुओं की लाशों से—पंक्तियों की पंक्तियां, सीधा जैसे सजा कर बनाई गई थीं। मुहल्लेवार, कुनबेवार; माताओंवार—अपनी कृपाणों से उन्हें कतल कर दिया था उनकी अपनी माताओं ने और उसी छत पर जिसके नीचे उन्होंने नाक रगड़ २ कर उनके लिए प्रार्थना की थी, आज अपनी विनय लौटा दी थी ???

और वे माताएं कहां थीं? कहां थीं वे गांव की कंवारियां, जिन्हें सात २ पर्दों में रक्खा जाता था। कहां थीं उस गांव की गोरियाँ, जो हाथ के स्पर्श से ही मैली हो जाती थीं? कहां थीं उस गाँव की पोठोहारनें'—जिनकी धूम बलख-बुखारा तक मची हुई थी?

कितने प्यारे होते हैं नारी के कोमल हाथ, जो डर से काँप रहे हों? कितनी मादक होती हैं नारी की आँखें जो करुणा की याचना कर रही हों? कितने मधुर होते हैं नारी के अधर जो प्रार्थनानुरोध कर रहे हों? त्रस्त, सहमी और दुबकी हुई नारी तो जैसे टूट २ जाती है।

लेकिन कहां थीं वे शेरनियां, जो स्वयं अपने शिशुओं का पेट चीर सकीं?—उनके हाथ जब खून से रंगे होंगे, जैसे मेहंदी से। उनके होंठ अब भी लथपथ होंगे रुधिर से, जिसका वे पा चुकी होंगी—अपने शिशुओं का ताज़ा २ गरम-गर्म खून किसी मां के होंठों पर भी रचा हुआ होगा; जिसने

अपने हाथ से कतल करके उसे चूम लिया हो।

कहां थी ? कहां थी ऐसी सुनहली परियां ??—नीचे —और नीचे - सबसे नीचे, गुरुद्वारे के पीछे। बागीचे में, खट्टे के पौदों से परे, एक ईंटों का चबूतरा—यह चबूतरा कूएं का है, सबसे गहरे, सबसे शीतल, सबसे मधुर-कूएं का है। एक कम, पूरी अस्सी सुन्दर पोठोहारनें-- जो कभी बूढ़ी नहीं होतीं, लड़कियां, बच्चियाँ, जवान, बेटियाँ-माताएं-बहिनें, पड़ोसिनें—सब इस कूएं में थीं।

"जान-बूझ कर स्वयं मरी हुई नारी का शरीर काठ ऐसा कठोर हो जाता है!"—फिसादियों के सरदार ने कूएं में एक बार झांका और फिर उसमें थूक दिया—

आज पूरा एक वर्ष बीत गया इस घटना को! जब भी किसी शहीद का नाम सुनता हूँ, मुझे अपनी बहिन याद आ जाती है। जब भी किसी मस्जिद, मन्दिर या गुरुद्वारे के समीप से गुजरता हूँ मुझे वह कुआँ याद आ जाता है। और कभी २ मेरे कानों में शब्द गूंजते हैं नम्बरदार की इस चिट्ठी के—"एक जर्जराँगी बुढ़िया, जो.....सिंह की दुकान पर काम करती थी, प्रत्येक दिन भोर-हुई दुकान के आगे रोकर चली जाती है। और वह जर्जरांगी बुढ़िया भी तो अधिक देर जीवित न रह सकी—"

अब तो गांव पर हल चला कर उसे समतल कर दिया गया है—

❀

मैं भूखा हूँ

"मैं भूखा हूँ--बाबूजी। मैं बहुत भूखा हूँ—" अपनी भूख का अनुहार करता हुआ एक नवयुक लड़का गाड़ी से बाहर लटक रहा था। उसकी आयु कठिनता से तेरह-चौदह वर्ष होगी, इससे अधिक नहीं।—किसी ने झिड़क कर, किसी ने उपेक्षा से मुंह मोड़ कर और किसीने क्षमा मांगकर उसे टाल दिया। वह पिछले कुछ मिनिटों से हमारी खिड़की के बाहर खड़ा था और गाड़ी के अन्दर मैं और मेरी एक कम्युनिस्ट साथिन बैठे थे। गाड़ी चलने में ही नहीं आती थी। हम जिस पहाड़ी कस्बे से उस गाड़ी पर सवार हुए थे, यह गाड़ी वहीं से चलती थी और वहीं से बिलम्ब के साथ चल रही थी।

"मैं बहुत भूखा हूँ बाबूजी !—" भिखमंगे लड़के की आवाज़ अभी तक बाहर से आ रही थी। मैं मानता हूं कि भीख माँगने का यह ढङ्ग बहुत बुरा है। कोशिश होनी चाहिये कि हमारे देश का यह कलंक मिट जाए मैं यह मानता हूं कि इस कोशिश में पढ़े-लिखे और समझदार लोग ही पहल कर सकते हैं। मैं जब कभी किसी भिखमंगे को कुछ देता हूं, तो मुझे निश्चय होता है कि मैं न भिखमंगे का भला कर रहा हूँ न अपना। और इस में मुझे अपने देश की दुरवस्था का कोई हल दृष्टिगोचर नहीं होता। फिर भी जब कोई मेरे आगे हाथ फैलाता है, तो मैं उसे कुछ न कुछ अवश्य दे देता हूँ। शायद इसलिये कि मैं इन्कार नहीं कर सकता। शायद इस लिये कि जिस तरह कुछ लोग झिड़क कर या क्षमा माँग कर अपना पीछा छुड़ा लेते हैं—मैं उसे कुछ देकर पीछा छुड़ा लेता हूं। खैर! यह मेरा निजी मामला है। भिखमंगे को खाली हाथ लौटा कर मुझे जो निराशा होती है, मैं उससे बच सकता हूँ।—जिस तरह किसी पर नाराज़ होने के बाद मुझे कमज़ोरी-सी अनुभव होती है, बिल्कुल इसी तरह किसी भिखमंगे के खाली हाथ चले जाने के बाद मुझे घबराहट-सी होने लगती है।

मेरे साथ की सीट पर बैठी हुई मेरी कम्युनिस्ट साथिन काफी गम्भीर और दृढ़-विचारशील थी। ज़िन्दगी के बारे में उसके विचार सुलझे, नपे-तुले और परखे हुए थे। ऐसे लोग एक पल के लिए भी भावुक नहीं बनते। कौन कह सकता है कि ज़िन्दगी के विषय में इनका दृष्टिकोण गलत

है या दुरुस्त ? ये उन्हीं विचारों पर सावधानी से गतिमान रहते हैं । इनके पाँव कभी नहीं डगमगाते, कभी नहीं लड़खड़ाते—

"बाबूजी ! मैं बहुत भूखा हूँ—"भिखमंगा लड़का अभी तक गाड़ी के बाहर गिड़गिड़ा रहा था। अगर मैं अकेला होता, तो कभी का उसे इकन्नी देकर चलता कर देता, लेकिन मुझे अपने साथ बैठी हुई अपनी कम्युनिस्ट साथिन का डर था। भिखमंगे से तो मैं अपना पीछा छुड़ा सकता था, लेकिन अपनी साथिन की उचित नाराज़गी मुझे काफी विस्मय में डाल रही थी।

"बाबू जी ! मैं भूखा हूं--" अभी तक उसकी आवाज़ आ रही थी। मेरा हाथ स्वयमेव जेब में चला गया। क्षणभर के लिये जैसे मैं विमुग्ध-सा हो गया था।

मेरी कम्युनिस्ट साथिन, जो देर से मेरे चेहरे के उतार-चढ़ाव देख रही थी—अब मेरी सीमित विवशता को भाँप कर हंस पड़ी। मैंने तत्काल इकन्नी भिखमंगे लड़के की हथेली पर फेंक दी और सन्तोष का साँस लिया।

बहुत देर तक हम इधर-उधर की बातें करते रहे। मेरी दुर्बलता को मेरी सुसंस्कृत साथिन ने जान बूझ कर उपेक्षित कर दिया। और मुझे हल्का तक न किया। इस बार तो उसने इतना भी न कहा—"यों गरजमन्द को कुछ देकर हम पूंजीपति, निधनों का अपमान करते हैं। उन्हें भूखा मरने दो, उनसे झूठी समवेदना कभी न करो। तभी ये लोग कभी विद्रोह करने का साहस संचित करके इस शासन को

उलट-पलट सकेंगे—" इस तरह का एक लम्बा सा व्याख्यान—

थोड़ी देर के बाद किसी ने हमें आकर बताया कि यह गाड़ी दूसरी गाड़ी का इन्तज़ार करने के बाद चलेगी और वह आने वाली गाड़ी 'लेट' है। हमसे ज्यादा सबर न हो सका, इस लिए हम बाहर आ गये। सामने रेलवे का 'रेस्ट हाउस' था—और उसके साथ स्टेशन-मास्टर की कोठी। पहले तो हम बाहर टहलते रहे, फिर रेस्ट-हाउस के बगीचे के अन्दर चले गए। मेरी साथिन ने माली की तरफ मुस्करा कर देखा और मोतिये की कलियां चुननी शुरू कर दीं—

"देखना! कोई कच्ची-कली न तोड़ लेना बाबू जी! जैसे माली ने अपने-आपको तसल्ली देने के लिये यह वाक्य कह दिया हो। और इस बात में हमारा जवाब सुने बिना चला गया। उचकते-उचकते और कलियाँ तोड़ते-तोड़ते हम थक गए। फिर अपनी सीट पर वापिस आकर हमने उन कलियों को छांटना शुरू कर दिया।—बेला अलग, मोतिया अलग,—मैं हैरान हो रहा था कि एक नारी की कोमल और अछूती पोरों से तोड़ी हुई कलियां, पुरुष के हाथों की तोड़ी हुई कलियों से अलग दिखाई दे रही थीं।

"काश! सुई-धागा होता तो मैं बैठे २ इन्हें पिरो भी लेती!" मेरी साथिन ने कामना प्रकट की। और मेरी नजर रेस्ट-हाउस से थोड़ी दूर हट कर पड़ी, जहाँ चूल्हे में आग आलोकित थी। कई अधनगे और नगे लोग इधर-उधर

बिखरे हुए बैठे थे। मैंने सोचा इन भिखमंगों से सूई-धागा माँग लाऊं, लेकिन फिर मेरी नज़र माँगने की कोई बेहतर जगह तलाश करने लगी। घूमता घामता मेरा ध्यान एक छाबड़ी वाले की ओर गया—हमसे लगभग पचास कदम दूर, वही भिखमगा लड़का—जो पन्द्रह मिनिट पहले अपनी भूख का वास्ता दे रहा था, इकन्नी में सुलगती हुई रस्सी से सिगरेट सुलगा रहा था। फिर उसने छाबड़ी वाले को कुछ पैसे दिये, सिगरेट का एक लम्बा कश लगाया और मदभरी अंखड़ियों के साथ उस मैदान की ओर चल दिया, जहां आग रोशन थी। मेरी साथिन अपने ध्यान में तल्लीन कलियां चुन रही थी—

भिखमंगे लड़के का मैल-कुचैला; फटा-पुराना लम्बा चोला उसके घुटनों पर झूल रहा था। तहमन्द का एक चीथड़ा नीचे लटक रहा था, उसका देह नगा हो रहा था। उसके बाल गुथे और उलझी हुई जटाओं की तरह थे।—पन्द्रह मिनिट पहले उसके नथुने गन्दगी से परिपूरित थे और उन पर मक्खियां भिन-भिना रही थीं। उसकी चिपचिपाती हुई आँखें जाले से भरी हुई थीं—वह उन्हें बड़ी कठिनता से झपता था। यह गरीबी और मुसीबत का मारा हुआ इन्सान, एक कीड़ा-सा दिखाई देता था।—

"काश! तुम कहीं से सूई-धागा पैदा कर सकते।" अपने ध्यान में संलग्न, कलियां चुनती हुई मेरी साथिन ने धीमे से कहा—

भिखमंगा लड़का मजे-मजे में चलता हुआ, अपने परिवार के बीच पहुंच चुका था। और—मिट्टी से खेलते हुए —उससे भी छोटी उमर के दो लड़के लपक कर उस पर झपट पड़े कि उससे सिगरेट छीन लें। भिखमंगे लड़के ने एक को ठोकर मार कर वहीं दोहरा कर दिया और दूसरे के पीछे दौड़ता दौड़ता और उसे पीटता हुआ रेस्ट-हाऊस की चारदीवारी के समीप लिटा आया। अधिक-से-अधिक उन दोनों लड़कों की उमर आठ या दस साल होगी। नगे-धड़गे, काले स्याह, हड्डियों के ढांचे—जैसे पतली और लम्बी जोंकें—

जब भिखमंगा लड़का दोबारा बड़-तले बैठे हुए अपने परिवार की ओर गया, तो मैंने सोचा कि अब यह अवश्य रोटी माँगेगा मेरे मस्तिष्क में उसकी याचना अभी तक गूंज रही थी—"मैं भूखा हूँ बाबूजी!"

एक बूढ़ी औरत, जिसने अपने सिर के बाल मेंहदी से रंगे हुए थे, जिसकी फटी हुई कमीज में से उसकी सिकुड़ी हुई छातियां लटकी हुई थीं, जिसकी गर्दन की खिंची हुई रगें एक-एक करके स्पष्ट दिखाई दे रही थीं, जिसकी आंखों की तारिकाएं जैसे किसी गढ़े में खुभी हुई जान पड़ती थीं, जिसके हाथ काँप रहे थे—बाजू काप रहे थे और जो सिमटी-सिकुड़ी हुई उकड़ू बैठी हुई थीं, एक विशेष भंगिमा में सिगरेट झाड़ते और अपनी ओर पढ़ते हुए भिखमंगे लड़के को देख कर मुस्कराई।

'जवान हो रहा है। मैंने तो इसे बुढ़ापे में जन्म

दिया था, फिर भी जवान हो रहा है। सिगरेट पिया कर। तेरे बाप का यह हुक्का कुछ नहीं होता—" और फिर बुढ़िया ने अपने अंध और हड्डियों की मुट्ठी बूढ़े को बताया—"सिगरेट पी रहा है देवकी!"

"अगर सूई-धागा होता, तो....." मेरी साथिन अभी तक कलियां चुन रही थी, उन्हें संवार रही थी और अपने ध्यान में मग्न थी।—

भिखमंगा लड़का, बुढ़िया के पास से हट कर दूर एक टीले पर बैठ गया।

सामने पन्द्रह-सोलह वर्ष की एक जवान लड़की चूल्हे में फूंकें मार मार कर आग प्रज्वलित कर रही थी। जब वह फूंकें मार कर शीश उठाती तो वह लड़का सिगरेट का कश लगा कर, धूएं को मुंह से निकाल कर गोल दायरे बनाने लगता और पर्याप्त मात्रा में धूआँ निकालता। धूएं के भंवर कितनी देर तक हवा में मंडलाते रहते। फूंकें मार-मार कर लड़की के लोचन धूएं से लाल हो गए थे। लकड़ियां गीली थीं, गोड़ों के चूल्हे में चारों तरफ से हवा प्रविष्ट हो रही थी। निदान उस लड़की ने हंडिया पर से रकाबी उतारी और कलछी से सालन हिलाया। फिर सालन से भरी हुई कलछी बाहर निकाली, कुछ देर तक उसे ठण्डा होने दिया। फिर हाथ से सालन में पड़ी हुई तरकारी को टटोला। कलछी को होठों के पास ले गई, थोड़ा सा सालन चखा। फिर उसी तरह कलछी हंडिया में उलट कर फेरनी शुरू कर दी। "मैं भूखा हूँ—" मन सोचा—वह भिखमंगा लड़का

मांगेगा, तो यह लड़की उसे कुछ खाने को ज़रूर देगी। लेकिन वह सिगरेट के कश लगाने में मग्न रहा। कभी कभी लड़की आंख उठा कर उसे देख लेती और फिर अपने काम में व्यस्त हो जाती।

थोड़ी देर के बाद वह लड़का वहां से उठ कर अपने परिवार के कुछ व्यक्तियों के पास पहुंचा जो पीठ किए हुए चौरस खेल रहे थे। सबसे अधिक मान्य खिलाड़ी ने लड़के की ओर हाथ बढ़ाया और लड़के ने बड़े ढङ्ग से उसकी अंगुलियों में सिगरेट थमा दिया जिस तरह सम आयु और सम व्यक्तित्व लोगों में बराबरी का ज्ञान होता है— समानता होती है—एक-दो कश लगा कर खिलाड़ी ने सिगरेट लड़के को लौटा दिया। कुछ क्षणों तक खेल देखने के उपरान्त लड़का उठने लगा, लेकिन मान्य खिलाड़ी ने उसे उठने न दिया। ऐसा मालूम होता था, जैसे उस लड़के के आजाने से वह जीतने लग गया था। सिगरेट पीते हुए लड़के का कदम बड़ा शुभ था। बाकी खिलाड़ी ललचाई हुई दृष्टियों से उस लड़के की ओर देख लेते।

"सिगरेट पी रहा है" आखिर खेलते एक ने कह ही दिया—

"क्यों न पिये ?" मान्य खिलाड़ी ने उत्तर दिया— "सिगरेट क्यों न पिये ? जब यह पैदा हुआ था, तो इसके अन्धे बाप को गाँव की ओर लौटते हुए अशर्फी मिली थी-" तीसरे ने चोट की।

फिर कुछ समय तक सभी खेल में उलझ गए और

नीरवता छा गई—

लड़का सिगरेट पी रहा था, चुटकी मार कर एक अजीब-अन्दाज में सिगरेट की राख झाड़ रहा था—

"सिगरेट पी रहा है साला"—खेल की संलग्नता तोड़ते हुए एक ने चिढ़ कर कहा—

"क्यों न पिये ? तुम्हें क्यों कष्ट हो रहा है ?" मान्य खिलाड़ी ने लड़के का पक्ष लिया—

"घर में भूनो भाँग नहीं, नाम बघेले राय —" तीसरे खिलाड़ी ने फिर चुभते हुए अन्दाज़ में धीमे से कहा—एक बार पुनः सब मौन हो गए। खेल नाजुक सूरत अख्तियार कर गया था। सबकी जान पर बन गई थी। खेलते खेलते जब वे उस लड़के को भूल गए, तो चुपके से वहाँ से उठ कर लड़का चर्खा कातती हुई एक अधेड़ उमर की औरत के पास चला गया—

"क्यों बाबू ! सिगरेट पिया जा रहा है ?- " अधेड़ उमर की औरत ने मुस्करा कर लड़के से कहा –

मेरे कानों में अभी तक उस लड़के की गिड़गिड़ाहट गूंज रही थी—

"बाबू जी ! मैं भूखा हूँ-मैं बहुत भूखा हूँ बाबूजी !"

फिर मुझे याद आया कि मेरे डिब्बे में बैठे हुए गम्भीर स्वभाव के यात्री ने उससे कहा था—"जा बच्चा ! जाके कोई काम कर। तेरा शरीर मज़बूत है, इस आयु में भीख माँगना शुरू कर दिया है ?"

"और फिर एक मोटे-से बनिये का उससे कहना भी

याद है,—तुझे नौकरी की ज़रूरत है तो आजा, तुझे अपने कारखाने में लगा दूंगा।"

'मालूम होता है कि सूई-धागा नहीं मिलेगा ?"—अपने ध्यान में तल्लीन, कलियां चुनती हुई मेरी साथिन ने धीमे से कहा—

भिखमंगा लड़का अभी तक सिगरेट पी रहा था और टहलता-टहलता वहीं पहुंच गया था—जहां लड़के 'अड्डी तरप्पा' (देहाती बच्चों का खेल) खेल रहे थे, उनमें जाकर खड़ा हो गया और रंग में भंग डालने लगा। बच्चे चीखे-चिल्लाए, रोए और उसे गालियाँ भी देने लगे। आखिर में वे सब मिल कर उससे लिपट गए, लेकिन वह बाज न आया। देर तक उन्हें सताता रहा। फिर अपने बालों पर हाथ फेरा और फिर एक-सम आयु लड़की को पकड़ कर कुएं की मुंडेर पर बठ गया और उसे भी अपने पास बैठा लिया, एक हाथ से वह सिगरेट पी रहा था और दूसरा हाथ उसने लड़की के कन्धों पर रख दिया था; सिगरेट के हर कश के बाद वह धुआं लड़की के मुंह पर दे मारता, लड़की आँखें बन्द कर लेती नाक पर हाथ रख लेती। बहुत देर तक वह उसे यूं ही छेड़ता रहा। धीरे-धीरे लड़की उससे घुल-मिल गई। दोनों बातें करने लगे और हंसने भी लगे। आखिर लड़के ने सिगरेट लड़की के होठों से लगा दिया। लड़की पहले हंसी और फिर उसने सम्मोहना से कुछ कहा। लड़की ने मुंह आगे कर दिया और लम्बा कश लगाया। वह खांसती खांसती उठ खड़ी हुई। लड़के ने फिर उसे अपने पास बैठा

लिया। लड़की के मुंह से धुआँ निकल रहा था। उसकी आंखों में पानी आ गया था। उसके चेहरे पर सख्त घबराहट के भाव पैदा हो गए थे, मगर लड़के ने उसे उठने न दिया। कुछ देर तक वे बातें करते रहे, फिर हंसने और चहचहाने लगे। आखिर लड़के ने फ़िर उससे सिगरेट पीने को कहा, लड़की ने इन्कार कर दिय। लड़के ने हठ किया, लड़की ने सिगरेट इस बार अपने हाथ में ले लिया। लड़के ने उसे सिगरेट को अंगुलियों में पकड़ना सिखलाया। लड़की उसी भरोसे के साथ; जिससे सिगरेट पिया था, अपने होठों तक ले गई और उसने बड़े सन्तोष से कश खींचा। कश लगाने के बाद लड़के ने सिगरेट उसके हाथ से ले लिया और लड़की धूएं के नशे में बदमस्त हो गई।

मुझे भूख लग रही थी गाड़ी भी चलने में नहीं आती थी। हमने सोचा था कि अगले स्टेशन पर पहुंच कर चाय पियेंगे। जितना बड़ा स्टेशन होता है, चाय उतनी ही साफ और सुथरी मिल जाती है। मैंने गुजरते हुए एक रेलवे-नौकर से पूछा – "क्यों जी गाड़ी कब तक चलेगी ?"

"यह तो मुझे भी नहीं पता–" उसने मेरी ओर देखे बिना उत्तर दिया––

"काश कि तुम किसी से सूई-धागा माँग सकते !" मेरी कम्युनिस्ट साथन चाहती थी कि मोटी मोटी और खिली हुई कलियां गूंथ कर उन्हें अपने जूड़े में टांग ले। सूई-धागा मिल जाए और गाड़ी जब जी चाहे चले। अभी तक वह कलियाँ छाँट रही थी और उन्हें साफ कर रही थी—

मेरे पास काम करने के लिये कुछ भी नहीं था। इसलिए मेरी बेचैनी ज़ोरों में बढ़ती जा रही थी। आखिर घूमती घूमती मेरी नज़र फिर उसी बड़ तले के कबीले पर जा पड़ी।

भिखमंगा लड़का एक बन्दर के सामने बैठा हुआ कश लगा रहा था। यह कश शायद उसका अन्तिम कश था, बहुत ही ऊबे मानस के साथ। सिगरेट का अन्तिम टुकड़ा उसने दूर फैंक दिया, फिर उसे ललचाई हुई दृष्टि से ताकता रहा। निराशा भरे लोचनों से वह उस अध-जले टुकड़े को ताकता हुआ बन्दर की ओर बढ़ा। सिगरेट का वह अध-जला टुकड़ा अभी तक सुलग रहा था। उसने एक बड़े से पत्थर के साथ उस टुकड़े को कुचल दिया और बन्दर के पास वापिस आ गया।

"बाबूजी मैं भूखा हूं—" उसने खास भीख मांगने के ढङ्ग से बन्दर के सामने आकर कहा। बन्दर तत्काल लेट गया और अपना पेट दिखाने लगा।

"मै बहुत भूखा हूं बाबूजी!" लड़के ने दोबारा कहा —बन्दर अपने पेट पर हाथ फेरने लगा। उसने फिर हाथों से इस तरह इशारा किया, जैसे उसका पेट खाली हो। भिखमंगे लड़के ने बन्दर को शाबास दी, फिर उसने लकड़ी का एक टुकड़ा तोड़ कर बन्दर के हाथ में दे दिया—

"करमदीन, सिगरेट किस तरह पीता है? लकड़ी क टुकड़ा करमदीन का सिगरेट था। बन्दर ने तत्काल लकड़ी को अंगुलियों में पकड़ लिया और चुटकी बजा कर बहुत

सुन्दर ढङ्ग से सिगरेट की राख झाड़ी और उसे अपने मुंह की ओर ले जाकर एक मजेदार कश लगाया। फिर इस तरह मुंह बनाया, जैसे कानों से और मुंह से धुआं निकाल रहा हो। बन्दर ने अपनी आँखों को तनिक चढ़ा लिया, जैसे मस्ती में आ गया हो।

"करमदीन बाबू, दफ्तर में सिगरेट पीते पीते काम किस तरह करता है?" बन्दर ने झट लकड़ी के टुकड़े को होठों में दबा लिया और उस टुकड़े को वहीं लटका रहने दिया। लकड़ी के दूसरे टुकड़े से कागज़ पर कुछ लिखना शुरू कर दिय।

मैंने कहा— ये सामने कई लोग डेरा डाले हुए हैं, इन लोगों के पास सूई-धागा ज़रूर होगा। ज़रा उनसे माँग लाओ, दो-चार आने लगेंगे!" मेरी कम्युनिस्ट साथिन काम साप्त करने के बाद देख रही थी।

"मैं भूखा हूँ बाबूजी!" मैं बहुत भूखा हूं।"

दूर से एक बूढ़ी सी आवाज़ आ रही थी मैंने उचक कर देखा—इस बार वह अन्धा अपनी बूढ़ी खूंसट बीबी के कन्धे पर हाथ रक्खे हुए भीख मांग रहा था।—भीख मांगते २ वह हमारे पास आगया। मैंने अपना सिर खिड़की के अन्दर कर लिया।

इस बार मेरी कम्युनिस्ट साथिन ने इकन्नी निकाली और बुढ़िया की हथेली पर रख दी। भिखमंगा अन्धा बूढ़ा उसके सुहागकी शुभ-कामनाएं अलापता हुआ आगे बढ़ गया।

"मैं भूखा हूं"—उनकी आवाज़ थोड़ी देर बाद फिर आनी शुरू हो गई।—आती रही—आती रही !!!...